श्री महावीर जैन विद्यालय

धार्मिक अभ्यासक्रम

जीवन उत्थान

श्रेणी - ४

संकलन - संपादन

प.पू. आचार्यदेव श्रीमद्
विजय हेमचंद्रसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्य
प.पू. गणिवर्य श्री कल्याणबोधिविजयजी म.सा.

प्रकाशक

श्री महावीर जैन विद्यालय
ऑगस्ट क्रांति मार्ग, मुंबई-४०० ०३६

श्री महावीर जैन विद्यालय

धार्मिक अभ्यासक्रम

जीवन उत्थान

श्रेणी-४

(अनुवाद)

❖ संकलन-संपादन ❖

प. पू. आचार्यदेव श्रीमद्

विजय हेमचंद्रसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्य

प.पू. गणिवर्यश्री कल्याणबोधि विजयजी म.सा.

❖ प्रकाशक ❖

श्री महावीर जैन विद्यालय

ऑगस्ट क्रांति मार्ग, मुंबई-४०० ०३६.

Jeevan Utthan - Shreni 4

Published : SHRI MAHAVIRA JAINA VIDYALAYA, Mumbai-400 036.

प्रकाशक : श्री महावीर जैन विद्यालय
ऑगस्ट क्रांति मार्ग, मुंबई-400 036.

प्रथम आवृत्ति : संवत 2049, ई.स. 2003

नकल : 1000

श्री महावीर जैन विद्यालय — शाखाएँ विद्यार्थीगृह

श्री वाडीलाल साराभाई विद्यार्थीगृह
ऑगस्ट क्रांति मार्ग, मुंबई-400 036.
Phone : 23887891, 23864417
Fax : 23851649

श्री भोलाभाई जेसिंगभाई विद्यार्थीगृह
पालडी बस स्टेन्ड के सामने,
अहमदाबाद-380 006.
Phone : (079) 6579956
(079) 6584352

श्री लहेरचंद उत्तमचंद विद्यार्थीगृह
आर. वी. देसाई रोड, प्रतापनगर,
वडोदरा-390 004.
Phone : (0265) 2432 468

श्री भारत जैन विद्यालय
आगरकर रोड, पूणे-411004.
Phone : (9520) 2565 1226

श्री लहेरचंद उत्तमचंद विद्यार्थीगृह
पंचायत कार्यालय के पास,
वल्लभविद्यानगर-388 120.
Phone : (02692) 230211

श्री मणिलाल दुर्लभजी विद्यार्थीगृह
हिलड्राइव, तलाजा रोड,
भावनगर-364 002.
Phone : (0278) 2593969, 2570221

आचार्यश्री विजय वल्लभसूरीश्वरजी जन्म शताब्दी विद्यार्थीगृह
जुहुलेन, बरफीवाला मार्ग,
महावीर चौक, अंधेरी(वेस्ट)
मुंबई-400 058.
Phone : 26210374/26718641

श्रीमती शारदाबेन उत्तमलाल महेता कन्या छात्रालय, 'श्री निकेतन',
दशापोरवाड सोसायटी,
आयंबिल भवन के पास,
पालडी, अहमदाबाद-380 007.
Phone : (079) 2658 2956
(079) 2658 7627

डॉ. यावंतराज पूनमचंदजी जैन श्रीमती संपूर्णा जैन विद्यार्थीगृह,
चित्रकुट नगर, भूवाणा प्रतापनगर
बाईपास, उदयपुर (राजस्थान)
Phone : (0294) 2440377

प्रकाशकीय

वर्षों पूर्व श्री महावीर जैन विद्यालय की स्थापना पूज्य आचार्य **श्री विजय वल्लभसूरीश्वरजी म.सा.** की प्रेरणा से की गई ।

जैन विद्यार्थियों को शैक्षणिक सुविधा के साथ-साथ धार्मिक संस्कार भी मिलते रहने चाहिए । उनका सर्वांगीण विकास होता रहे । यही इस संस्था का विशुद्ध उद्देश्य रहा है ।

आज तक हजारों जैन विद्यार्थियों ने इस संस्था के सहारे अपनी शिक्षा पूरी की है तथा उच्च कक्षा तक पहुँचकर अनेक विद्यार्थियों ने संस्था का नाम रोशन किया है और महत्त्वपूर्ण स्थान पर शोभित हैं ।

व्यववहारिक शिक्षा के साथ विद्यालय का विद्यार्थी धर्मपरायण और आचारसंपन्न बने इस उद्देश्य को सफल बनाने के लिए संस्था द्वारा "जीवन-उत्थान" नाम से चार विभागों में अभ्यासक्रम आयोजित किया गया है । बहुत ही सराहनीय उपक्रम है ।

विद्यालय के धार्मिक अभ्यासक्रम की नियोजित समिति के सदस्य डॉ. रमणलाल चि. शाह, श्री सेवंतीभाई के. शाह, श्री अरविंदभाई आर. शाह, श्री जयंतीभाई मणिलाल शाह तथा श्री जवाहरलाल मोतीचंद शाह, इन्होंने चारों श्रेणियों के अभ्यासक्रम की रूपरेखा तैयार की; अतः हम उनके आभारी हैं ।

पू. वैराग्यदेशनादक्ष आचार्यश्री हेमचंद्रसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्य गणि **श्री कल्याणबोधी विजयजी महाराजश्रीजी** ने अपने संयम-साधना और अतिव्यस्तता के बीच भी विद्यार्थियों के भावि संस्कार और संस्था के प्रति स्नेह के कारण "जीवन-उत्थान" श्रेणी का अनुमोदनीय कार्य बहुत ही मेहनत उठाकर संपादित किया; अतः संस्था आपश्री की सदा ऋणी रहेगी ।

इस संस्था में लगातार पाँच वर्ष रहनेवाले विद्यार्थी "जीवन-उत्थान" अध्ययन की चारों परीक्षाएँ उत्तीर्ण करेंगें तो निश्चित ही उन्हें जैन तत्त्वज्ञान का गहरा ज्ञान प्राप्त होगा, इसमें शंका का कोई स्थान ही नहीं है ।

इस 'जीवन-उत्थान' श्रेणीबद्ध परीक्षा के अध्ययन द्वारा विद्यार्थी धर्मसंपन्न, आचार संपन्न और संघ-शासन के रखवाले बने यही शुभाभिलाषा ।

मुंबई-36.
दिनांक : 02-07-2003

मंत्रीगण
श्री महावीर जैन विद्यालय

किंचित् प्रास्ताविकम्

श्री महावीर जैन विद्यालय संस्था के प्रेरक परमपूज्य, परमोपकारी युगद्रष्टा आचार्य भगवंत श्री विजय वल्लभसूरीश्वरजी म.सा. के मार्गदर्शनानुसार प्रारंभ से ही व्यवहारिक शिक्षा के साथ धार्मिक शिक्षा का समन्वय होना ही चाहिए, यही आपका महत् उद्देश्य रहा । बल्कि संस्था की स्थापना हुई उसका मूल उद्देश्य ही यही था । इसलिए संस्था की घटना और योग्य नियमावलि में स्पष्ट उल्लेख किया गया कि इस संस्था में अभ्यासार्थ रहनेवाले विद्यार्थी/विद्यार्थिनी के लिए धार्मिक वर्ग में हाजिर रहना आवश्यक है और निर्धारित परीक्षा में उत्तीर्ण होना भी अनिवार्य है । ऐसा नियम बनाने के पीछे उद्देश्य यही रहा कि नई पीढी के बालकों को व्यावहारिक शिक्षा के साथ धर्मसंस्कार भी मिले ।

इस नियम के अनुसार संस्था के सभी विद्यार्थीगृहों में और कन्या छात्रालय में धार्मिक शिक्षकों की नियुक्ति की गई । नियमित धार्मिक वर्ग लिए जाने लगे, तथा धार्मिक परीक्षा लेने की योग्य व्यवस्था की गई । धार्मिक अभ्यास क्रमशः हो इसलिए अभ्यासक्रम को चार कक्षाओं में विभाजित किया गया ।

साधार्मिक भक्ति-उत्थान को जीवन का मुख्य उद्देश्य बनाकर उसके लिए सतत प्रयत्नशील रहनेवाले पू. आचार्यदेवश्री विजय वल्लभसूरीश्वरजी महाराज साहब इस विद्यालय की नींव हैं ।

आचार्यदेवश्री की तमन्ना थी कि जैन विद्यार्थी व्यावहारिक शिक्षा उच्चत्तम प्राप्त करें पर उसके साथ धार्मिक संस्कार उसे सदा सींचते रहे । ऐसे धार्मिक संस्कार से संस्कारित विद्यार्थी आगे बढ़कर अपना जीवन जैन संस्कार से परिपल्लवित बनाकर जैन संघ का, राष्ट्र का, इतनाही नहीं बल्कि विश्व का हितकारी बने । ऐसा उदार आशय था ।

आज हम देश की स्थिति देख रहे हैं - धार्मिक संस्कार न होने के कारण केवल व्यावहारिक शिक्षाप्रणाली तथा कथित स्थान पर आसनस्थ लोगों ने देश को आर्थिक, सामाजिक, संस्कारिक दृष्टि से किस तरह बरबाद कर दिया है ।

प्राचीन काल में राजा के मंत्री अधिकतर जैन हुआ करते थे । वे मंत्री आचार्यों के भक्त होते थे । आचार्यों का सत्संग मिलते रहने के कारण वे परमार्थदृष्टि और लोगहितकारी भावना से युक्त होते थे । इसी कारण राज्य सुव्यवस्थित, शांततामय ढंग से चला करता था । लोग भी सुख अनुभव करते थे ।

श्री महावीर जैन विद्यालय की स्थापना करने का यही एक मात्र कारण है कि देश में जहाँ-जहाँ उच्च स्थानों पर उच्चशिक्षित व्यक्तियों की नियुक्ति की जाती है वहाँ-वहाँ जैन संघ के बुद्धिशाली व्यक्ति उच्च प्रकार की शिक्षा प्राप्त करके हर क्षेत्र में उच्च स्थान प्राप्त करके जनहित की प्रवृत्ति करने में अग्रगण्य रहे ।

मुंबई, अमदाबाद, वडोदरा, भावनगर, वल्लभविद्यानगर, पूना, उदयपुर जैसे बड़े-बड़े शहरों में स्थापित उन विद्यालयों में हजारों युवकों ने शिक्षा प्राप्त की और देश-विदेश में उच्च स्थान पर हैं । धार्मिक संस्कार पाकर इस विद्यालय का स्नातक पुण्ययोग से श्रीमंत बनकर साधर्मिक भक्ति करने लगे। इसका सारा श्रेय श्री महावीर जैन विद्यालय को है ।

कई डॉक्टर, वकील, इंजिनियर इत्यादि को ऐसा कहते हुए हमने सुना है कि अगर श्री महावीर विद्यालय न होता तो आज हम इस स्थानपर नहीं होते । इस संस्था में रहकर जिन-जिन विद्यार्थियों ने ज्ञान प्राप्त किया और आगे जीवन में धनवान बने । वे विद्यार्थी इस संस्था को लाखों रूपयों का दान देकर ऋणमुक्तता और कृतार्थता का अनुभव करते हैं । संस्था का उद्देश्य यही है कि यहाँ रहकर दोनों प्रकार की शिक्षा प्राप्त कर उच्चशिक्षित बनें, तेजस्वी बनें, साथ-साथ धार्मिक-संस्कारों से परिपूर्ण बनें । वे परिवार का सुयोग्य पालनकर्ता बनें, देव और गुरु का भक्त बनें, संघ का सेवक बनें, समाज का रक्षक बनें, साधर्मिक का मित्र बनें, आत्मा का उद्धारक बनें ।

इस धार्मिक अभ्यासक्रम की रूपरेखा विद्यालय के अभ्यासक्रम समिति के सदस्य -डॉ. रमणलाल चि. शाह, श्री सेवंतीभाई के. शाह, श्री अरविंदभाई आर. शाह, श्री जयंतीभाई मणिलाल शाह तथा श्री जवाहरलाल मोतीचंद शाह ने तैयार की । अभ्यासक्रम इस प्रकार बनाया है कि जिसमें जैन तत्त्वज्ञान की और जैनत्व की पूरी महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है ।

अत: हम धार्मिक अभ्यासक्रम समिति को हृदय से धन्यवाद देते हैं ।

धार्मिक अभ्यासक्रम की रूपरेखा तैयार करने के बाद श्रेणी 1 से श्रेणी 4 की किताबें छपवाने की संपूर्ण जिम्मेदारी श्री महावीर जैन विद्यालय के ट्रस्टी श्री प्राणलालभाई के. दोशीजी ने स्वीकार की और पूर्णता से निभाई भी । उन्होंने तुरंत आचार्य हेमचंद्रसूरि शिशु गणी श्री कल्याणबोधी विजयजी महाराज साहब से संपर्क साधा और गुरुदेव को धार्मिक अभ्यासक्रम की किताबें तैयार करने की बिनती की । गुरुदेवश्रीजी ने श्री महावीर जैन विद्यालय की धार्मिक शिक्षा और संस्कार के उपक्रम को सहर्ष स्वीकृत किया । तथा सक्रिय अनुमोदना दी । फिर तो शीघ्र ही किताबें तैयार हो गई ।

आचार्य हेमचंद्रसूरि शिशु गणिश्री कल्याणबोधी विजयजी म.साहबने धार्मिक पुस्तकों के संकलन के लिए सहयोग दिया अत: हम अत्यंत उपकृत हैं । गुरुदेव के आशीर्वाद विद्यालय पर हमेशा बरसते रहें यही भावना रखते हैं ।

धार्मिक अभ्यासक्रम की पुस्तकों का प्रुफ जाँचना और प्रिन्ट करने में अनेक व्यक्तियों ने जो सहकार दिया उन सबका हम हृदयपूर्वक आभार व्यक्त करते हैं ।

विशेष शुभ उद्देश्य को सामने रखकर संस्था ने "जीवन-उत्थान" की चार श्रेणियाँ विद्यार्थियों के धार्मिक अभ्यासक्रम रूप में प्रकाशित हुई यह बहुत ही आनंदप्रद बात है ।

इस अभ्यासक्रम के माध्यम से असंख्य युवक/युवतियाँ अपने जीवन को सुसंस्कृत, धार्मिक, आचारसंपन्न बनाकर आत्मशुद्धि करते रहें यही सद्भावना ।

खांतिलाल गोकलदास शाह
सुबोधरत्न ची. गारडी
प्रकाशभाई पी. झवेरी
(मानद् मंत्रीगण)

अषाड़ सुदी - 3, बुधवार
दिनांक : 02-07-2003
मुंबई-36.

सरस्वती वंदना

हे शारदे माँ हे शारदे माँ अज्ञानता से हमें तार दे माँ,
तू स्वर की देवी, संगीत तुझसे, हर शब्द तेरा, हर गीत तुझसे,
हम हैं अकेले, हम हैं अधूरे, तेरी शरण हम, हमें तार दे माँ, ... हे शारदे माँ....१
मुनियों ने समझी, गुणियों ने जाणी, भारत की भाषा, वाङ्मय की वाणी,
हम भी तो समझें, हम भी तो जाने, विद्या का हमको अधिकार दे माँ, ... हे शारदे माँ.... २
तू श्वेत वर्णी, कमल पर बिराजे, हाथों में वीणा, मुकुट सरपे साजे,
मनसे हमारे, मिटा दे अँधेरा, हमको उजाले का संसार दे माँ, ... हे शारदे माँ....३

सदाचार प्रार्थना

हे प्रभु आनंद-दाता, ज्ञान हमको दीजिए,
शीघ्र सारे दुर्गुणों को, दूर हमसे कीजिए.... १
लीजिए हमको शरण में, हम सदाचारी बनें,
राष्ट्रसेवक, धर्मरक्षक, वीर, व्रतधारी बनें.... २
मात-पिता और गुरुजनों की, नित्य ही सेवा करें,
धैर्य-बुद्धि-मन लगाकर, गुण ही गाया करें.... ३
निन्दा किसी की हम किसीसे, भूलकर भी न करें,
सत्य बोले, झूठ त्यागें, मेल आपस में रहें... ४
क्रोध, मान, और लोभ-कपट से नित्य ही बचते रहें
राग-द्वेष से मुक्त बनने... नीति पर चलते रहें.... ५
प्रेम से हम सज्जनों की, सर्वदा भक्ति करें,
दीन-हीन को दान दें और धर्म में ही रत बनें.... ६
हे भगवन् हमारी लाज रखना, आप ही के हाथ है,
कर कृपा अति शीघ्र हमको, शुद्ध-बुद्धि-दीजिए.... ७

आचार्य श्री विजयवल्लभसूरीश्वरजी म.सा. की स्तुति

श्री वल्लभ गुरु के चरणों में, मैं नित उठ शीश नमाता हूँ ।
मेरे मन की कली खिल जाती है, जब दर्श तुम्हारा पाता हूँ ।।१।।
मुझे वल्लभ नाम ही प्यारा है, इस ही का मुझे सहारा है ।
इस नाम में ऐसी बरकत है, जो चाहता हूँ सो पाता हूँ ।।२।।
जब याद तेरे गुण आते है, दुःख-दर्द सभी मिट जाते हैं ।
में बनकर मस्त दिवाना फिर, बस गीत तेरे ही गाता हूँ ।।३।।
गुरुराज तपस्वी महामुनि, सिरताज हो तुम महाराजों के ।
में एक छोटा सा सेवक हूँ, कुछ कहता हुआ शरमाता हूँ ।।४।।
गुरु चरणों में है अर्ज मेरी, बढ़ती दिन-रात रहे भक्ति ।
मेरा मानुष जन्म सफल होवे, यही भक्ति का फल चाहता हूँ ।।५।।

श्रेणी-४

अनुक्रमणिका

क्रम	विषय	पृष्ठ नं.
१	सूत्र स्वाध्याय तथा प्रतिक्रमण विधि	1
२	जैन तत्त्वज्ञान	11
	A. प्रमाण और जैन शास्त्र	
	B. नवतत्त्व पदार्थ संग्रह भाग - 2	
	C. अनेकान्तवाद (स्याद्वाद) सप्तभंगी अनुयोग	
	C. जैन साहित्य - एक दृष्टि	
३	जैनाचार	51
	A. मार्गानुसारी जीवन	
	B. शास्त्र दृष्टि से ट्रस्टी	
४	प्रतिभा परिचय - श्री हरिभद्रसूरि	57
५	तीर्थ परिचय	72
६	शांत सुधारस (मैत्री इत्यादि भावना)	86
७	प्रश्नोत्तरी	94

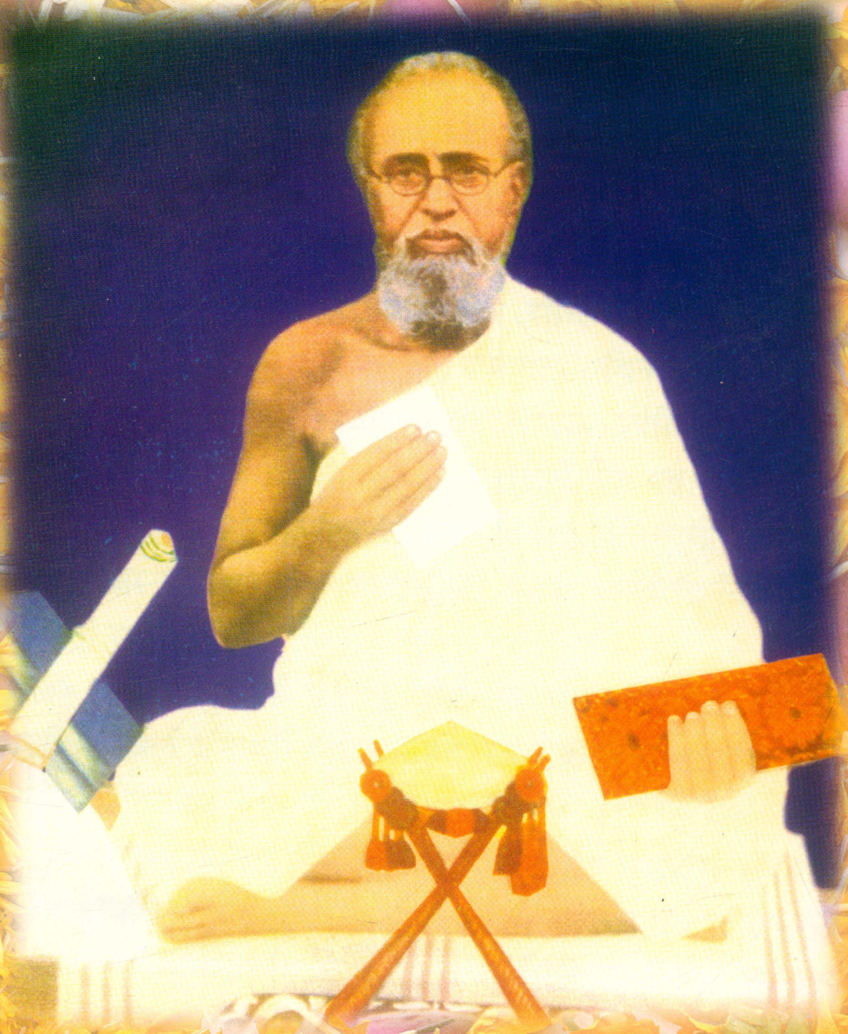

पंजाब केसरी आचार्य
श्रीमद् विजय वल्लभसूरीश्वरजी म.सा.

।। श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथाय नमः ।।

(नवमं स्मरणम्) श्री बृहच्छांति स्तोत्रम्

भो भो भव्याः ! श्रुणुत वचनं प्रस्तुतं सर्वमेतद्, ये यात्रायां त्रिभुवनगुरोरार्हता भक्तिभाजः ।। तेषां शान्तिर्भवतु भवता मर्हतादिप्रभावादारोग्यं श्री धृति-मतिकरी-क्लेशविध्वंसहेतुः ।।1।।

भो भो भव्यलोकाः ! इह हि भरतैरावत विदेह संभवानां समस्ततीर्थकृतां जन्मन्यासनप्रकंपानंतरमवधिना विज्ञाय सौधर्माधिपतिः सुघोषा घंटाचालनानंतरं सकल सुरासुरेन्द्रैः सह समागत्य सविनयमर्हद् भट्टारकं गृहीत्वा गत्वा कनकाद्रिशृंगे विहित-जन्माभिषेकः शांतिमुद्धोषयति, यथा ततोऽहं कृतानुकारमिति, कृत्वा, महाजनो येन गतः स पन्थाः, इति भव्यजनैः सह समेत्य स्नात्रपीठे स्नात्रं विधाय शांतिमुद्घोषयामि ।। तत्पूजायात्रास्नात्रादि महोत्सवानंतरमिति कृत्वा कर्णंदत्वा निशम्यतां निशम्यतां स्वाहा ।।2।।

ॐ पुण्याहं पुण्याहं प्रीयन्ता प्रीयन्ताम् भगवन्तोऽर्हन्तः सर्वज्ञः सर्वदर्शिनस्त्रिलोकनाथस्त्रिलोकमहितास्त्रिलोकपूज्यास्त्रिलोकेश्वरा स्त्रिलोकोद्योतकराः ।।3।।

ॐ ऋषभ अजित संभव अभिनंदन सुमति पद्मप्रभुः सुपार्श्व चंद्रप्रभ सुविधि शीतल श्रेयांस वासुपूज्य विमल अनंत धर्म शांतिकुन्थु अर मल्लि मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्व वर्द्धमानान्ता जिनाः शान्ताः शान्तिकरा भवन्तु स्वाहा ।।4।।

ॐ मुनयो मुनिप्रवरा रिपु विजय दुर्भिक्ष कान्तारेषु दुर्गमार्गेषु रक्षन्तु वो नित्यं स्वाहा ।।5।।

ॐ ह्रीं श्री धृति मति कीर्ति कान्ति बुद्धि लक्ष्मी मेघा विद्यासाधनप्रवेशनिवेशनेषु सुगृहीतनामानो जयन्तु ते जिनेन्द्राः ।।6।।

ॐ रोहिणी प्रज्ञप्ति वज्रशृंखला वज्रांकुशि अप्रतिचक्रा पुरुष-दत्ता काली महाकाली गौरी गांधारी सर्वास्त्रा महाज्वाला मानवी वैरोटया अच्छुप्ता मानसी महामानसी षोडश विद्यादेव्यो रक्षंतु वो नित्यं स्वाहा ।। 7 ।।

ॐ आचार्योपाध्याय प्रभृति चातुर्वर्णस्य श्री श्रमणसंघस्य शान्तिर्भवतु तुष्टिर्भवतु पुष्टिर्भवतु ।।8 ।।

ॐ ग्रहाश्चंद्र सूर्यांगारक बुध बृहस्पति शुक्र शनैश्चर राहु केतु सहिताः सलोकपालाः सोमयमवरुण कुबेर वासवादित्य स्कंद विनायकोपेता ये चान्येऽपि ग्राम नगर क्षेत्र देवतादयस्ते सर्वे प्रीयन्तां प्रीयन्ताम् अक्षीण कोशकोष्ठागारा नरपतयश्च भवन्तु स्वाहा ।।9 ।।

ॐ पुत्र, मित्र, भ्रातृ-कलत्र-सुहृत् स्वजन, संबंधी बन्धुवर्ग सहिता नित्यं चामोद प्रमोद कारिणः अस्मिंश्च भूमण्डलायतननिवासि साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाणां, रोगोपसर्ग, व्याधि, दुःखदुर्भिक्ष दौर्मनस्योपशमनाय शान्तिर्भवतु ।।10 ।।

ॐ तुष्टि पुष्टि ऋद्धि वृद्धि मांगल्योत्सवाः ।

सदा प्रादुर्भूतानि, पापानि शाम्यन्तु दुरितानि ।। शत्रवः पराङ्मुखाः भवन्तु स्वाहा ।।11 ।।

श्रीमते शान्तिनाथाय, नमः शान्तिविधायिने ।
त्रैलोक्यस्यामराधीश, मुकुटाभ्यर्चितांघ्रये ।।1 ।।
शान्तिः शान्तिकरः श्रीमान्, शान्ति दिशतु मे गुरुः ।।
शान्तिरेव सदा तेषां, येषां शान्तिगृहे गृहे ।।2 ।।
उन्मृष्टरिष्टदुष्ट-ग्रहगति दुःस्वप्न दुर्निमित्तादि ।।
संपादित हितसंपन्नामग्रहणं जयति शान्तेः ।।3 ।।

श्री संघ जगज्जन पद राजाधिपराजसन्निवेशनाम् ,

गोष्ठिकपुरमुख्याणां, व्याहरणैर्व्याहरेच्छांतिम् ।।4।।

श्रीश्रमण संघस्य, शान्तिर्भवतु, श्री जनपदानां, शांतिर्भवतु ।। श्रीराजाधिपानां शान्तिर्भवतु, श्रीराजसन्निवेशानां शान्तिर्भवतु, श्री गोष्ठिकानां शान्तिर्भवतु, श्री पौरमुख्याणा शान्तिर्भवतु, श्री पौरजनस्य शान्तिर्भवतु, श्री ब्रह्मलोकस्य शान्तिर्भवतु, ॐ स्वाहा, ॐ स्वाहा ॐ श्री पार्श्वनाथाय स्वाहा ।एषा शान्तिः प्रतिष्ठा यात्रा स्नात्राद्यवसानेषु शान्तिकलशं गृहीत्वा कुमकुम चंदन कर्पूरागरु धूपवासकुसुमांजलि समेतः स्नात्रचतुष्किकायां श्रीसंघसमेतः शुचिशुचिवपुः पुष्प वस्त्र चंदनाभरणालंकृतः पुष्पमालां कंठे कृत्वा शान्तिमुद्घोषयित्वा शान्तिपानीयं मस्तके दातव्यमिति ।।

नृत्यन्ति नृत्यं मणिपुष्पवर्षं, सृजन्ति गायन्ति च मंगलानि, स्तोत्राणि गोत्राणि पठन्ति मन्त्रान्, कल्याणभाजो हि जिनाभिषके ।।1।।

शिवमस्तु सर्वजगतः परहित निरता भवन्तु भूतगणाः ।। दोषाः प्रयान्तु नाशं, सर्वत्र सुखी भवन्तु लोकाः ।।2।। अहं तित्थयरमाया, सिवादेवी, तुम्ह नयरनिवासिनी ।। अम्ह सिवं तुम्ह सिवं, असिवोवसमं सिवं भवतु स्वाहा ।।3।।

उपसर्गाः क्षयं यान्ति, छिद्यन्ते विघ्नवल्लयः ।।

मनः प्रसन्नतामेति, पूज्यमाने जिनेश्वरे ।।4।।

सर्वमंगल मांगल्यं, सर्वकल्याणकारणम् ,

प्रधानं, सर्व धर्माणां, जैनं जयति शासनम् ।।5।।

भावार्थ : भगवान का जब जन्म होता है तब इन्द्र, देवता उन्हें मेरुपर्वत पर स्नान कराने ले जाते हैं । स्नान कराने के बाद वे शांतिपाठ बोलते हैं । इस स्तोत्र में अनेक जीवों की, अनेक प्रकारसे शांति की इच्छा प्रकट की गई है । श्री नेमिनाथ की माता शिवादेवी ने देवीगति में इसकी रचना की है - ऐसा कहा जाता है ।

देवसिय प्रतिक्रमण-विधि

1. प्रथम सामायिक लेना ।
2. अगर पानी सेवन किया हो तो मुँहपत्ति की पडिलेहना करना ।
3. आहार किया हो तो मुँहपत्ति का पडिलेहण करना । वंदना करने के पश्चात् पच्चक्खाण की अनुमति लेना, दो बार वंदना करना ।
4. यथाशक्ति पच्चक्खाण लेना ।
5. 'खमासमण' देकर 'इच्छा० कारेण चैत्यवंदन करना ?....'इच्छं' कहकर 'चैत्यवंदन' और 'जंकिंचि' पाठ बोलना ।
6. 'नमुत्थुणं' 'जंकिंचि' बोलकर खड़े रहना "अरिहंत चेइआणं" ।
7. बोलकर एक नवकार का कायोत्सर्ग करना, पारकर, नमोऽर्हत्० बोलकर प्रथम 'थोय' कहना ।
8. 'लोगस्स' बोलना ।'सव्वलोए अरिहंतचेइआणं' कहकर 'एक नवकार' का कायोत्सर्ग करके, पार कर दूसरी 'थोय' कहना ।
9. 'पुक्खरवरदी०' कहकर, 'सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्गं वंदण०' बोलकर एक 'नवकार'का काउस्सग्ग करके, पार कर तीसरी 'थोय' कहना ।
10. "सिद्धाणं बुद्धाणं" कहकर वैयावच्चगराणं० करेमि काउस्सग्गं, "अन्नत्थ०" कहकर एक 'नवकार' का कायोत्सर्ग करना, पारकर नमोऽर्हत्० कहना और चौथी 'थोय' कहना ।
11. चार 'खमासमण' वंदनापूर्वक "भगवानहं, आचार्यहं, उपाध्यायहं, सर्वसाधुहं कहना । फिर "इच्छाकारी समस्त श्रावक को वंदु" कहकर -
12. 'इच्छा०' देवसिअ पडिकमणे ठाऊं 'इच्छं' कहकर दाहिना हाथ चरवला या कटासणा पर स्थापना कर "सव्वस्सवि देवसिय०" कहना ।
13. खडे होकर "करेमि भंते" "इच्छामि ठामि काउस्सग्गं जो मे देवसियो०" "तस्स उत्तरी०" अन्नत्थ० कहना ।
14. "पंचाचारकी" अतिचार की आठ गाथाओं का काउस्सग्ग करना । आठ गाथा न आती हो तो 'आठ नवकार' का काउस्सग्ग करना । वह पार करके लोगस्स बोलना ।
15. फिर नीचे बैठकर तीसरे आवश्यक की मुहपत्ति की पडिलेहना करना और "दो वंदना" देना ।

16. पुनः खडे होकर "इच्छा० देवसियं आलोऊँ ?" 'इच्छं" आलोएमि जो मे देवसिओ०" कहकर–

17. 'सात लाख' का पाठ बोलना, फिर 'अठारह पापस्थान की आलोचना करना ।

18. "सव्वस्सवि दिवसिअ०" कहते समय दाहिना, घुटना खडा करके ।

19. बैठकर 'एक नवकार' बोलना ।'करेमि भंते' इच्छामि पडिक्कमिउं' बोलना 'वंदित्तुं' कहना फिर –

20. दो वंदना देना ।

21. "अब्भुट्ठिओ" खमाकर 'दो वंदना' देना फिर खडे होकर "आयरिय उवज्झाए" कहना ।

22. फिर 'करेमि भंते' "इच्छामि ठामि काउस्सगं जो मे देवसिओ०" कहना । "तस्स उत्तरी" "अन्नत्थ" बोलकर "दो लोगस्स" अथवा "आठ नवकार" का काउस्सग करना, पार करके –

23. "लोगस्स०" "सव्वलोए अरिहंत चेइआणं०" कहकर "एक लोगस्स" अथवा 'चार नवकार' काउस्सग्ग करना – फिर पार करके –

24. "पुक्खरवरदी०" "सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्गं वंदण०" कहना ।एक "लोगस्स" अथवा 'चार नवकार' काउस्सग्ग करना, काउस्सग्ग पार करके –

25. "सिद्धाणं बुद्धाणं" बोलना ! सुअदेवयाओ करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थ कहना, फिर 'एक नवकार' का काउस्सग्ग करना, पार कर "नमोऽर्हत्०" कहना, पुरुषों को "सुअदेवया०" की और स्त्रियों ने नमोऽर्हत्० कहे बिना "कमलदल०" की थोय बोलना फिर –

26. "खित्तदेवयाओ करेमि काउस्सग्गं अन्नत्थ०" कहना फिर 'एक नवकार' का काउस्सग्ग करना, पारना, "नमोऽर्हत्०" कहना, निसेखित्ते "क्षेत्रदेवता की थोय", स्त्रियों ने नमोऽर्हत्० बोले बिना यस्यांक्षेत्रं की थोय बोलना ।

27. प्रगट एक 'नवकार' बोलना, बैठकर छट्ठे आवश्यक की मुहपत्ती की पडिलेहना करना और "दो वंदना" देना ।

28. "सामायिक, चऊव्विसत्थो, वंदन, पडिक्कमण, काउस्सग्ग, पच्चक्खाण किए हैं जी," ऐसा कहकर छ आवश्यक याद करना ।

29. "इच्छामो अणुसट्ठिं, नमो खमासमणाणं" "नमोऽर्हत्०" कहना । पुरुषों को

"नमोऽस्तु वर्द्धमानाय०" कहना, और स्त्रीयों को संसारदावा की तीन थोय बोलना । फिर -

30. "नमुत्थुणं" "नमोऽर्हत् कहना । स्तवन गाना फिर "वरकनक" कहकर चार खमासमणपूर्वक "भगवानहं" आदि कहना ।

31. फिर दाहिना हाथ चरवला अथवा कटासन पर स्थापित कर अढाइज्जेसु० कहना । फिर

32. 'इच्छा० देवसिअ पायश्चित्त विसोहणत्थं काउस्सग्ग करता हूँ ?' "इच्छं देवसिअ पायच्छित विसोहणत्थं करेमि काउस्सग्गं" "अन्नत्थ०" कहने के बाद "चार लोगस्स" 'चंदेसु' तक अथवा "सोलह नवकार" का काउस्सग्ग करना, वह पार करके प्रगट "लोगस्स" बोलना ।

33. फिर "खमासमण" देकर, "इच्छा० सज्झाय संदिसाहुं ? इच्छं" बादमें खमासमण देकर इच्छा० सज्झाय करुँ ? "इच्छं" कहकर एक 'नवकार' बोलना सज्झाय कहना । फिर एक नवकार कहना फिर खमासण देना ।

34. "इच्छाकारेण० दुक्खखकय-कम्मकखय-निमित्तं काउस्सग्गं करुं ?" 'इच्छं' दुक्खकखय-कम्मकखय-निमित्तं करेमि काउस्सग्गं "अन्नत्थ" बोलकर संपूर्ण चार 'लोगस्स' अथवा सोलह 'नवकार' का काउस्सग्ग करना । फिर किसी एक ने अथवा स्वयं पारकर 'नमोऽर्हत्०' 'लघुशांति' बोलना बादमें प्रगट लोगस्स कहना ।

35. "खमा०" देकर इरियावही० तस्सउत्तरी० अन्नत्थ० कहना । एक 'लोगस्स' अथवा चार 'नवकार' का काउस्सग्ग करना, पारना, प्रगटे 'लोगस्स' कहना ।

36. 'चउककसाय' 'नमुत्थुणं' 'जावंती', 'खमा०' 'जावंत' 'नमोऽर्हत्' उवसग्गहरं' 'जयवीयराय' कहना । मुहपत्ति पडिलेह करने का आदेश माँगकर मुहपत्ति की पडिलेहना करना । सामायिक पारने की विधिनुसार सामायिक पारना । दूसरा अंतरविधि गुरु से समझना ।

राइअ प्रतिक्रमण की विधि

1. प्रथम सामायिक विधिपूर्वक लेना ।

2. 'इच्छा०' कुसुमिण-दुसुमिण-उड्डावणी राइअ पायच्छित्त विसोहणत्थं

काउस्सग्ग करुं ? 'इच्छं०' कुसुमिण दुसुमिण उड्डावणी राइअ पायाच्छित विसोहणत्थं करेमि काउस्सग्गं'' अन्नत्थ० ' कहकर चार 'लोगस्स' (सागरवर गंभीरा तक) अथवा सोलह 'नवकार' का काउस्सग्ग करना, फिर पारना और प्रकट लोगस्स बोलना ।

3. 'खमासमणा' देकर 'जगचिंतामणी' के चैत्यवंदन से शुरू करके 'जयवीयराय' तक कहना ।
4. 'चार खमासमणा' देकर भगवानहं, आचार्यहं, उपाध्यायहं, सर्वसाधुहं कहना ।
5. "खमासणा"पूर्वक 'सज्झाय' का आदेश माँगना, एक 'नवकार' बोलकर भरहेसर की सज्झाय बोलना और एक नवकार बोलना ।
6. इच्छकार सुहराइ० बोलना ।
7. इच्छा०राइअ पडिक्कमणो ठाऊँ ? "इच्छं" दाहिना हाथ चरवला या कटासणा पर स्थापित करके "सव्वस्सवि राइअ" कहना ।
8. "नमुत्थुणं" "करेमि भंते" इच्छामि ठामि काउस्सग्गं 'तस्स उत्तरी०' 'अन्नत्थ' कहना, एक 'लोगस्स' चंदेसु तक अथवा चार 'नवकार' का काउस्सग्ग करना, पारना ।
9. 'लोगस्स' 'सव्वलोए अरिहंत०' कहना एक 'लोगस्स' अथवा चार 'नवकार' का काउस्सग्ग करना, पारना फिर 'पुकखरवरदी०' 'सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्गं वंदन०' कहना, फिर पंचाचार की अतिचार की आठ गाथा अथवा '8 नवकार' का काउस्सग्ग करना, पारकर 'सिद्धाणं बुद्धाणं' कहकर तीसरे आवश्यक में मुहपत्ति की पडिलेहना करना दो वंदना देना । बादमें इच्छा० संदिसह भगवन् राईम आलोउँ । इच्छ आलाएमि कहकर जोमे राइयो० सात लाख अठारह पाप स्थानक कहकर सवस्सवि राइय कहकर दाहिना घूटन खड़ाकरके नवकार, करेमिभंते, जो मे राइयो पडिक्कमामि कहकर 'वंदिता' सूत्र कहना, दो वंदन लेना ।
10. अब "अब्भुट्ठिओ" खमाकर 'वांदना' तक सर्व देवसिअ' प्रतिक्रमण के अनुसार कहना । जहाँ जहाँ 'देवसिअ' शब्द आता है वहाँ 'राइअ' कहना फिर -
11. "आयरिअ उवज्झाए" 'करेमि भंते' 'इच्छामि ठामि काउस्सग्गं०' 'तस्स उत्तरी' 'अन्नत्थ' कहना, 'तपचिंतवणी' अथवा 'सोलह नवकार' का काउस्सग्ग करना । पार कर -

12. प्रगट 'लोगस्स' कहना । छट्ठे आवश्यक की मुहपत्ति की पडिलेहना करके 'दो वांदना' देना ।
13. फिर तीर्थवंदना करना 'सकलतीर्थ' कहना ।
14. यथाशक्ति पच्चक्खाण लेना ।
15. 'सामायिक, चउव्विसत्थो, वंदन, पडिक्कमण, काउस्सग्ग, पच्चक्खाण किए हैं जी' ऐसा कहकर छ आवश्यक याद करना । पच्चक्खाण लिए हों तो 'किए हैं जी ?' कहना अगर धारणा की हो तो 'धारे हैं जी !' कहना । फिर " इच्छामो अणुसट्ठिं नमो खमासमणं" 'नमोऽर्हत्० ' कही - स्त्रीयाँ 'संसादावा'
16. पुरुष 'विशाललोचन' कहकर 'नमुत्थणं' 'अरिहक्त चेइआणं०' कहना । एक नवकार का माउस्सग्ग करना । पारना, 'नमोऽर्हत्० ' कहना, कल्लाणकंदं सूत्र की प्रथम 'थोय' कहना । फिर -
17. देवसिअ विधि के अनुसार 'लोगस्स', 'पुकखरवरदी' 'सिद्धाणं-बुद्धाणं ' कहना अनुक्रम से शेष तीन थोय बोलना ।
18. 'नमुत्थुणं' कहना 'भगवानहं' आदि चारों 'खमासमणो' वांदना ।
19. दाहिना हाथ चरवला या कटासणा पर स्थापित कर 'अड्ढाइज्जेसु' कहना ।
20. श्री सिमंधरस्वामी की चैत्यवंदन करना । उसमें प्रथम श्री सिमंधरस्वामी के दोहा बोलना । हर दोहा के बाद खमासमणा देना । फिर इच्छा० श्री सिमंधर स्वामी आराधनार्थ चैत्यवंदन कुरं ? इच्छं कहकर नीचे बैठकर श्री सिमंधरस्वामी का चैत्यवंदन करना । फिर जंकिंचि से थोय तक सब देरासर के चैत्यवंदन की विधिनुसार करना । परंतु स्तवन और थोय श्री सिमंधरस्वामी के कहना फिर जय वियराय कहना । अरिहंतचेइआणं, अन्नत्थ आदि कहना ।
21. श्री सीमंधर स्वामी के चैत्यवंदन के अनुसार श्री सिद्धाचलजी का चैत्यवंदन कहना । दोहा, स्तवन और थोय की सिद्धाचलजी के कहना ।
22. फिर सामायिक पारने की विधिनुसार सामायिक पारना ।

पक्खि प्रतिक्रमण विधि

1. प्रथम देवसिक प्रतिक्रमण में 'वंदितु' तक सब कहना । चैत्यवंदन "सकलार्हत्" कहना और थोयो "स्नातस्या" की कहना ।

2. फिर खमासमणा देकर 'देवसिअ आलोइअ पडिक्कंता इच्छाकारेण संदिसह भगवन ! 'पक्खि मुहपत्ति पडिलेहुं ?' 'इच्छं' ऐसा कहकर मुहपत्ति पडिलेहना ।
3. फिर दो 'वांदना' देना ।
4. फिर 'इच्छा० संबुद्धाखामणेणं अब्भुट्ठिओमि अब्भिंतर पक्खिअं खामेऊं ? इच्छं खामेमि पक्खिअं, पनरस दिवसीणं पनरस राइदियाणं जंकिंचिं अपत्तिअं०" कहना ।
5. 'इच्छा० पक्खिअं आलोऊं ? इच्छं आलोएमि, जो मे पक्खिओ अइयारो कओ० कहना, फिर 'इच्छा०' पक्खि अतिचार आलोऊं ? 'इच्छं' ऐसा बोलकर अतिचार कहना फिर एवंकारे श्रावक धर्म पालने में श्री समकित मूल बारह व्रत, एक सौ चौबीस अतिचार में से कोई अतिचार दिवससंबंधी सूक्ष्म, बादर जाणता-अजाणता हुए हों तो वे सारे मन, वचन, काया से मिच्छामि दुक्कडं कहना । फिर-
6. 'सव्वस्सवि पक्खिम दुच्चिंतिअ, दुब्भासिअ, दुच्चिट्ठिअ, इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! "इच्छं तस्स मिच्छा मि दुक्कडं" कहना ।
7. 'इच्छाकारी ! भगवन् पसाय करी पक्खि तप प्रसाद करशोजी' ऐसा उच्चारण करके इस प्रकार कहना - "चउत्थभत्त, एक उपवास, या दो आयंबिल या तीन नीवि या चार एकासणा या आठ बेआसणा या दो हजार सज्झाय या र० नवकार की माला गिनना यथाशक्ति तप करना । फिर तप किया हों तो 'पइट्ठिओ' कहना । और न किया हो तो भी करना चाहते हों तो 'तहत्ति' कहना, और न किया हो तो भी करना चाहते हों तो 'तहत्ति' कहना, या न करना हों तो मौन रहना ।
8. फिर दो वंदना करना ।
9. "इच्छा० अब्भुट्ठिओमि पत्तेक्खामणेणं अब्भिंतर पक्खिअं खामेऊं ? इच्छं खामेमि पक्खिअं । पनरस राइंदियाणं, जंकिंचि अपत्तिअं०" कहना ।
10. दो वंदना करना ।
11. देवसिअ आलोइअ इच्छा० संदिसह भगवन् पक्खिअं पडिक्कमुं ? "सम्मं पडिक्कमामि" ऐसा बोलकर 'करेमि भंते !' समाइयं० । बोलकर 'इच्छामि पडिक्कमिउं जो मे पक्खिओ०" कहना । फिर -

12. खमासणा देकर 'इच्छा पक्खिसूत्र पढूँ ?" 'इच्छं' ऐसा बोलकर तीन नवकार बोलना, साधु हों तो पक्खिसूत्र कहना, और साधु न हों तो तीन नवकार बोलकर श्रावक 'वंदित्तु' कहना । फिर सुअदेवयानी थोय कहना ।

13. दाहिना घुटना खडा करके एक 'नवकार' बोलना 'करेमि भंते' 'इच्छामि पडि०' बोलकर 'वंदित्तु' कहना ।

14. 'करेमि भंत्ते' 'इच्छामिठामि काउस्सग्गं जो मे पक्खिओ०' तस्सउत्तरी० 'अन्नत्थ' कहना, बारह लोगस्स का काउस्सग्ग करना, वे लोगस्स 'चंदेसु निम्मलयरा' तक ही बोलना अथवा अडतालीस नवकार का काउस्सग्ग करना । काउस्सग्ग पार कर प्रगट 'लोगस्स' कहना ।

15. मुहपत्ति की पडिलेहना करके 'वंदना' दो देना

16. 'इच्छा०' समत्तखामणेणं अब्भुट्ठिओमि अब्भिंतरपक्खिअं खामेउ ? इच्छं खोमि पक्खिअं, एक पक्खाणं पनरस दिवसाणं पनरस राइदियाणं जंकिंचि अपत्तिअं०' कहना ।

17. खमसणा देकर इच्छाका, पक्खि खामणा खामुं ? ऐसा बोलकर चार खामणां खामना ।

18. गुरु भगवंत खामणा कहेंगे अगर गुरु भगवंत उपस्थित न हों तो खमासणा देकर, "इच्छामि खमासमणो" कहकर दाहिना - उपधी पर रखकर एक नवकार बोलना "सिरसा मणसा, मत्थेण वंदामि कहना । तीसरा खमणा ते अंते "तस्स मिच्छामि दुक्कडं कहने का बाद पक्खिअं, सम्मतं देवासिअं पडिक्कमामि कहना ।

19. देवसिअ प्रतिक्रमण में वंदितु और दो वंदना देकर वहाँ से देवसिअं प्रमाणे करना फिर सामायिक पारने की विधि तक बोलना ।

20. सुअदेवयाने जीसे खित्ते की थोय के बदले ज्ञानादि एवं यस्या क्षेत्र की थोय कहना, स्तवन अजित शान्ति का कहना ।

21. सज्झाय में संसार दावा की चार कहना यह हृदय से ऊँची आवाज में बोलना ।

22. लघुशांति के स्थानपर बडी शांति बोलना और संतिकरं बोलना फिर सामायिक पारना ।

2. जैन तत्त्वज्ञान

A. प्रमाण और जैनशास्त्र

किसी वस्तु का बोध दो तरह से होता है - एक किसी प्रकार की बिना अपेक्षा वस्तु को समग्र रूप से देखना । दूसरा अमुक अपेक्षा से अमुक अंश तक देखना । आँखें खोलीं, घड़ा देखा, घड़े का समग्र रूप से बोध हुआ । परंतु शहर के बाहर जाने के बाद याद आया कि "घड़ा तो शहर में ही रह गया ।" यह अंशतः बोध हुआ । वैसे घड़ा तो घर में था, वह पनसाल में रहा है ।" परंतु अमुक अपेक्षा याने दृष्टि से बोध हुआ कि "शहर में रह गया" यह अंशतः बोध हुआ ।

समग्र रूप से जो बोध होता है, उसे **'सकलादेश'** अर्थात् **प्रमाण** कहा जाता है । अंशतः होनेवाले बोध को **'विकलादेश'** अर्थात् **'नय'** कहा जाता है । **प्रमाण** और **नय** ये ज्ञान के ही दो प्रकार हैं ।

प्रमाण ज्ञान समग्र रूप से होता है इसमें "अमुक अपेक्षा से.ऐसा है" ऐसा नहीं होता । जीभ से शक्कर की मिठास अनुभव की या शास्त्रों से जाना कि निगोदमें अनंत जीव हैं इस तथ्य को जानने के लिए किसी अपेक्षा की ज़रूरत नहीं ।

परंतु यह जाना कि घड़ा रामलाल का है इसमें 'अपेक्षा' है कि मालिक की दृष्टि से 'घड़ा रामलाल नाम के मालिक का या बनानेवाले का अथवा संग्राहक का है "ऐसा ज्ञान, या अपेक्षा से अंशतः ज्ञान हुआ यह 'नय' है ।

पाँच प्रमाण

प्रमाण ज्ञान के दो प्रकार हैं- **1.** प्रत्यक्ष **2.** परोक्ष । प्रत्यक्ष ज्ञान याने ज्ञान 'अक्ष' (आत्मा) प्रति अर्थात् साक्षात् (बाह्य साधन बिना) जो होता है । परोक्ष-ज्ञान याने आत्मा से 'पर' यानी इन्द्रिय इत्यादि किसी साधन द्वारा जो ज्ञान होता है ।

परोक्ष ज्ञान के दो प्रकार- **1.** मतिज्ञान, **2.** श्रुतज्ञान ।

प्रत्यक्ष ज्ञान के तीन प्रकार- **1.** अवधिज्ञान **2.** मनःपर्याय (पर्यव) ज्ञान, **3.** केवलज्ञान । इस प्रकार प्रमाण ज्ञान के पाँच प्रकार-मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान ।

1. मतिज्ञान : मतिज्ञान इन्द्रिय और मन के द्वारा होता है । चक्षुइन्द्रिय से द्रव्य, रूप (वर्ण), संख्या, आकृति इत्यादि का ज्ञान होता है । उदा. "यह घड़ा है, लाल है, एक ही है, गोल है"... इत्यादि । घ्राणेन्द्रिय से गंध का भान होता है" यह सुगंध कहाँ से आई ? रसनेन्द्रिय से रस का "इसमें मिठास अच्छी है," स्पर्शेन्द्रिय से स्पर्श का, "यह नरम-गरम है ।", श्रोत्रेन्द्रिय से शब्द का "वह ! कितना मधुर शब्द !" और मन से चिंतन, स्मरण, अनुमान, तर्क वगैरह द्वारा होता है । उदा. "कल जाऊँगा", "वह रास्ते में मिला था ।" धुआँ दिखाई देता है अतः अग्नि होगी ।" इत्यादि स्मरण कल्पना ये सब मतिज्ञान का विषय है ।

मतिज्ञान की चार कक्षाएँ हैं ।

प्रथम 'कुछ है' ऐसा ज्ञान हो उसे '**अवग्रह**' कहा जाता है । यह क्या होगा ? अमुक नहीं, अमुक संभव है - ये 'इहा' "यह अमुक वस्तु ही है " ऐसा निर्णय होना याने '**अपाय**' जिसे भुलाया नहीं जाता । इतनी दृढ़ मान्यता याने '**धारणा**' ।

इस तरह मतिज्ञान क्रमशः चार तरह से हुआ 1. अवग्रह 2. इहा 3. अपाय 4. धारणा ।

उदा. 1. कान पर स्वर आते ही "कुछ बज रहा है" ऐसा श्रोत्रेन्द्रिय से अवग्रह हुआ, 2. "वह आवाज़ तबले की है या ढोल की ? ढोल की ही लगती है-यह हुई ईहा 3. "ठीक, ढोल की ही आवाज़ है, यह अपाय मतिज्ञान । 1. फिर मन में निश्चित रूप से धारणा हो गई कि यह ढोल की ही आवाज़ है यह धारणा मतिज्ञान हुआ ।

अवग्रह के दो प्रकार हैं - 1. 'कुछ हैं' ऐसा व्यक्त भास हो इसमें प्रथम पदार्थ इन्द्रिय के संपर्क से जुड़ता जाता है और अव्यक्त अत्यंत कम चेतना जागृत करता है, वह व्यंजनावग्रह । फिर 'कुछ हैं' ऐसे पदार्थ का सामान्य बोध हो जाय वह अर्थावग्रह सोये हुए व्यक्ति में कान पर उसको पुकारे गए नाम के शब्द ध्वनित होते रहते हैं । फिर कुछ आवाज वह महसूस करता है । शब्द टकराने में अत्यंत चेतना जागृत होती है, अतः उसे भी (व्यंजनावग्रह) ज्ञान कहा जाता है । दिवाल पर शब्द टकराएँ तो उसे इसका ऐसा कुछ भी ज्ञान नहीं होगा । क्योंकि वह (निर्जीव)अजीव है, जड़ है । अजीव पर टकाराए यह अलग बात है । सजीव इन्द्रियों पर टकराना अलग बात है । उन शब्दों का केवल संपर्क ही नहीं परंतु

अव्यक्त चक्षु और मन के बिना चार इन्द्रियों को ही होता है । क्योंकि चक्षु और मन को अपने विषय का संपर्क नहीं होता । वैसी उसको आवश्यकता भी नहीं होती । केवल योग्य देश में आई हुई वस्तु को छुए बिना चक्षु पकड लेते हैं । वैसे ही मन भी विषय से संपर्क किए बिना चिंतन में लेता है ।

मानस मतिज्ञान के रूपक

1. मन से भविष्य का विचार करना यानी **चिंता** ।

2. भूतकाल को याद करना यानी **स्मृति** ।

3. वर्तमान का विचार करना यानी **मति** या **संज्ञा** ।

4. "यह वही व्यक्ति है ।" ऐसा वर्तमान के साथ भूतकाल का अनुसंधान होना यानी प्रत्याभिज्ञान ।

5. "अमुक" हो तो अमुक होना ही चाहिए । ऐसा विकल्प यानी तर्क ।

6. हेतु जानकर कल्पना करना याने **अनुमान,** उदा., नदी में बाढ़ आई देखकर लगता है कि ऊपर कहीं बरसात हुई होगी " ।

7. देखी गई या सुनी गई वस्तु अमुक बिना हो नहीं सकती अतः अमुक की कल्पना करना वह अर्थापत्ति ।

उदा. कोई सशक्त बलवान व्यक्ति है वह 'दिन में खाता नहीं' जब ऐसा हमें मालूम हो जाय तो हम तुरंत कहेंगे तो फिर जरूर रात को खाता होगा । अर्थापत्ति मतिज्ञान ।

श्रुतज्ञान : यह उपदेश सुनकर या लिखावट पढ़कर होता है ।

अमुक शब्द सुने वह श्रोत्र से शब्द का मतिज्ञान हुआ । जो भाषा नहीं जानता उसे भी यह होता है । परंतु शब्द श्रवण के बाद, उससे भाषा के ज्ञाता को पदार्थबोध होता है । कही हुई वस्तु को समझना वह है श्रुतज्ञान । यह शास्त्र से होता है, किसी के उपदेश से या सलाह से योग्य शिक्षा से भी होता है । जहाँ-जहाँ उपदेश, आगम आदि से ज्ञान होता है वह श्रुतज्ञान है ।

श्रुतज्ञान के 14 भेद हैं

अक्षरश्रुत : अक्षर से बोध होता है । **अनक्षरश्रुत**-खँखारा करके मस्तक, अँगुली इ. चेष्टा (संकेत/इशारा करके) से बोध होता है ।

संज्ञीश्रुत : मनसंज्ञा वालों को होता है । **असंज्ञीश्रुत=**एकेन्द्रिय इ. जीवों को होता है । **सम्यक्श्रुत=**समकितीका श्रुतबोध । **मिथ्याश्रुत**=मिथ्यात्व का शास्त्रबोध । **सादिश्रुत**=भरतादि क्षेत्र में आदि पानेवाला श्रुत । **अनादिश्रुत**=महाविदेह में अनादि से चला आया श्रुत । **सपर्यवसितश्रुत**=नाश होनेवाला श्रुतज्ञान । **अपर्यवसित-श्रुत**=अविनाशी श्रुतधारा । **गनिकश्रुत**=समान गम याने पेरेग्राफ (फकरा) वाला श्रुत । **अगमिकश्रुत**-इससे विपरीत । **अंगप्रविष्टश्रुत**=अंग नामक आगमशास्त्रों का ज्ञान । **अनंगप्रविष्टश्रुत**=अंग बाह्य आवश्यक, 'दशवैकालिक' इ. शास्त्र का श्रुतज्ञान । सम्यकश्रुतमें जिनागम तथा जैनशास्त्र आते हैं । मूलमें वे सर्वज्ञ श्री वितराग तीर्थंकर देव की बानीमें से प्रकट हुए हैं । इसलिए सम्यक् है ।

45 आगम

तीर्थंकर भगवान संसारावस्था का त्याग कर निष्कलंक चारित्र और बाह्य अभ्यंतर तप की साधना करके वीतराग सर्वज्ञ बने हैं । फिर वे गणधर शिष्यों को "उप्पनेइ वा, विगमेइ वा, धुवेइवा", यह त्रिपदी देते हैं । गणधरों की श्रवण शक्ति उनके पूर्वजन्म की विशिष्ट साधना के कारण बहुत तीव्र होती है । बुद्धिकौशल्य, तीर्थंकर भगवान का योग, चारित्र इ. विशिष्ट कारण मिलने से गणधरदेवों के श्रुतज्ञानावरण कर्म का अपूर्व क्षयोपशम होता है । इससे विश्व तत्त्व का प्रकाश होने से बारह अंग(द्वादशांगी) आगम की रचना करते हैं, और सर्वज्ञ प्रभु उसे प्रमाणित करते हैं ।

बारह अंग-1. आचारांग 2. सूत्रकृतांग 3. स्थानांग 4. समवायांग 5. भगवती (व्याख्या प्रज्ञप्ति) 6. ज्ञाताधर्मकथा 7. उपासकदशांग 8. अंतकृतदशांग 9. अनुपरोपपातिकदशांग 10. प्रश्न-व्याकरण, 11. विपाक सूत्र 12. द्दष्टिवाद ।

इन बारह अंगों में "द्दष्टिवाद" में 14 पूर्व नाम के महाशास्त्रों का समावेश है । वीरप्रभु के निर्वाण के बाद हजारेक वर्ष बाद 'द्दष्टिवाद' आगम का विच्छेद हो गया याने भुलाया गया । अतः शेष रहे 11. अंग ये 11 + औपपातिक वगैरह 12 उपांग बृहत्कल्प इत्यादि छेद सूत्र + आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, ओघनिर्युक्ति, ये 4 मूलसूत्र + नंदीसूत्र और अनुयोगद्वार ये दो + 10 प्रकीर्णकशास्त्र (गच्छाचार पयन्ना इत्यादि)=ऐसे कुल 45 आगम आज उपलब्ध हैं । इसमें 'आवश्यक' भी गणधररचित, बाकी पूर्वधररचित हैं ।

पंचांगी आगम

दस आगमसूत्र पर श्रुतकेवली चौदहपूर्वधर आचार्य भगवान श्री भद्रबाहुस्वामी ने श्लोकबद्ध संक्षिप्त विवेचना लिखी है, वह 'निर्युक्ति' । इस पर पूर्वधर महर्षि ने श्लोकबद्ध विशेष विवेचन किया है वह 'भाष्य' और तीनों पर आचार्य भगवंतों ने प्राकृत-संस्कृत विवेचन किया है, वह 'चूर्णि' और 'टीका' कही जाती है । इस प्रकार सूत्र-निर्युक्ति-भाष्य -चूर्णि और टीका, ये पंचांगी आगम कहलाते हैं ।

अन्य जैन-शास्त्र

इसके अलावा तत्त्वार्थ महाशास्त्र, जीवविचार, नवतत्त्व, दंडक, संग्रहणी, क्षेत्रसमास, छः कर्मग्रंथ, पंचसंग्रह, कर्मप्रकृति, देववंदनावली भाष्य, लोकप्रकाश प्रवचनसारोद्धार वगैरह अनेकानेक **प्रकरण-शास्त्र** बहुश्रुत आचार्यो की रचनाएँ हैं ।

उपदेशशास्त्रों में उपदेशमाला, उपदेश-पद, पुष्पमाला, भवभावना, उपदेशतरंगिणी, वीतराग-स्तोत्र अध्यात्मकल्पद्रुम, शांतसुधारस, 32 अष्टक, उपमितिभवत्र, पंच कथा ज्ञानासार इत्यादि शास्त्र हैं ।

आचारग्रन्थों में श्रावक धर्मप्रज्ञप्ति, श्राद्धविधि, धर्मरत्नप्रकरण, श्राद्धप्रतिक्रमणप्रवृत्ति, आचारप्रदीप, धर्मबिंदु, पंचाशक, 20 वीशी, षोडशक, धर्मसंग्रह, संघाचारभाष्य वगैरह हैं ।

योग ग्रंथों में ध्यानशतक, योगशतक, योगबिंदु, योगदृष्टि समुच्चय, योगशास्त्र, अध्यात्मसार, 32 बत्रीशी, योगसार वगैरह हैं ।

दर्शनशास्त्रों में सन्मतितर्क, अनेकांतवाद, ललितविस्तरा, धर्मसंग्रहणी, शास्त्रवार्तासमुच्चय, षड्दर्शनसमुच्चय, स्याद्वाद-रत्नाकर, उत्पादादिसिद्धि, नयोपदेश, अनेकांतसमुच्चय, प्रमाणमीमांसा, न्यायावतार, द्रव्य-गुण-पर्याय का रास, सप्तभंगी, तर्क परिभाषा, स्याद्वादमंजरी, रत्नाकावतारिका वगैरह हैं ।

चारित्रग्रंथों में वसुदेवहींडी, त्रिषष्ठिशलाकापुरुषचरित्र, कुवलयमाला, समराइच्चकहा, भवियसत्तचरिय, पुहवीचंद-गुणसागर चरिय, तरंगवती, अममचरित्र, जयानंदकेवली चरित्र.... इत्यादि अनेक चरित्र हैं ।

शब्दशास्त्र में सिद्धहेमव्याकरण, बुद्धिसागरव्याकरण, अभिधानचिंतामणी, अनेकार्यनाममाला काव्यानुशासन, लिंगानुशासन, छंदानुशासन, वृत्तरत्नाकर, न्यायसंग्रह, देशीनाममाला, हेमप्रकाश, लघुहेमप्रकाश, उणादिप्रकरण इत्यादि हैं ।

काव्यशास्त्रों में तिलकमंजरी, द्वयाश्रयकाव्य, शालिभद्रचरित्र, हीरसौभाग्य, जैनमेघदूत, गौतमीयकाव्य, विजयप्रशास्ति, कुमारपालचरित्र, शांतिनाथ महाकाव्य इत्यादि।

ज्योतिषशास्त्रादि आरंभसिद्धि, नारचंद्र, लग्नशुद्धि । इनके अलावा वास्तुशास्त्र वगैरह शिल्पशास्त्र तथा अन्य शास्त्र, गुजराती रासा इत्यादि अनेकानेक विषयों के अनेक शास्त्र हैं ।

अवधि-मनः पर्याय-केवलज्ञान

3. अवधिज्ञान :

अवधि याने मर्यादा अर्थात् रूपी द्रव्य तक और इन्द्रियादि की मदद लिए बिना आत्मा को जो सीधा प्रत्यक्ष ज्ञान हो वह अवधिज्ञान है । देव और नारकी को यह ज्ञान-जन्मतः होता है । मनुष्य, तिर्यंच कों तप इत्यादि गुणों से प्रगट होता है । इस प्रकार एक भवप्रत्ययिक, दूसरा गुणप्रत्ययिक । इस ज्ञान द्वारा निश्चित अमुक देशकाल के रूपी पदार्थ प्रत्यक्ष देख सकते हैं ।

अवधिज्ञान प्रतिपाती, अप्रतिपाती.... इत्यादि छ प्रकार से हैं । अवधिज्ञान कोई नाश पाता है, या कोई टिका रहता है । वह अनुक्रम से **प्रतिपाती** और **अप्रतिपाति** । कोई उत्पत्तिक्षेत्र के बाहर जीव के साथ जा सकता है, तो कोई नहीं जा सकता । वे अनुक्रम से **अनुगामी** और **अननुगामी** कोई बढ़ता जाता है तो कोई घटता है, वह अनुक्रम से **वर्धमान** और **हीयमान** इस प्रकार अवधिज्ञान के छः प्रकार हैं ।

4. मनःपर्याय(पर्यव) ज्ञान :

अढ़ाई द्वीप में जो संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव हैं उन्हें चिंतन के लिए मनोवर्गणा में से जो मन मिला है, उस मन को प्रत्यक्ष करने का खास कार्य मनःपर्यायज्ञान करता है । यह सिर्फ अप्रमादी मुनिमहर्षियों को होता है । इसके दो प्रकार हैं - 1. ऋजुमति 2. विपुलमति ।

1. ऋजुमति : जो विषय को सामान्य रूप से जानता है । उदा. "इस व्यक्ति के मन में घड़े के संबंध में चिंतन चल रहा है ।"

2. विपुलमति : जो विशेष रूप से जानता है । उदा. यह घड़ा पाटलीपुत्र नगर में अमुक समय में अमुक व्यक्ति ने बनाया है ।"

5. केवलज्ञान :

तीनों काल के सर्व द्रव्यों के सर्व पर्याय को जो प्रत्यक्ष हस्तकमलवत् जाना जाता है वह केवलज्ञान । केवलज्ञान में विश्व के कोई भी काल की, कोई भी वस्तु का अज्ञान नहीं, केवल मात्र ज्ञान ही है । इसीलिए इसे केवलज्ञान कहा है । आत्मा सम्यक्त्व सहित सर्वविरति-चरित्र, अप्रमत्त, अपूर्वकरण इ. गुणस्थान से आगे बढ़ता हुआ, शुक्लध्यान से सर्व मोहनीय कर्म का नाश करके सर्व ज्ञानावरण-दर्शनावरण -अंतराय कर्म का नाश करते हैं तब केवलज्ञान प्रकट होता है । नया ज्ञान कहीं बाहर से नहीं आता, आत्मा के स्वरूप में ही ज्ञान बसा हुआ है, सिर्फ उस पर जो कर्मदलों के आवरण आए हैं वे जैसे जैसे टूटते जाते हैं वैसे-वैसे ज्ञान प्रगट होता जाता है । जब सारे कर्मआवरण नष्ट होते हैं तब समस्त लोकालोक को प्रत्यक्ष देख सकते हैं, ऐसा केवलज्ञान 13 वें गुणस्थान में प्रगट होता है ।

सर्वज्ञता की किस कारणों से प्राप्ति :-

आत्मा जड़ से अलग हो जाती है । ज्ञान आत्मा में स्वभावत: होता है । आवश्यकता होती है जड़ से आत्मा को अलग करने की । जैसे जैसे आवरण हटते जाते हैं वैसे-वैसे ज्ञान प्रगट होता है । ज्ञान का स्वभाव दर्पण के समान ज्ञेय को अपने में समाविष्ट करने का है । ज्ञेय के अनुसार परिणमन होता है । जब कोई आवरण ही अब शेष नहीं रहे तो स्वाभाविक ही आत्मा सर्व ज्ञेय पदार्थ को विषय कर लेती है । "ज्ञान में इतना ही आता, इससे अधिक नहीं" इस प्रकार ज्ञान को मर्यादा में बाँधा जा सकता है । अत: केवलज्ञान में अतीत-अनागत-वर्तमान-स्थूल-सूक्ष्म, समस्त लोकालोक ज्ञेय सर्व प्रत्यक्ष है ।

ऐसा सर्व प्रत्यक्ष ज्ञान जिसे होता है, वे ही जगत् के सत्य तत्त्व और सच्चा मोक्ष मार्ग बता सकते हैं । ये ही परम आप्त पुरुष कहलाते हैं । उन्हीं के वचन अर्थात् 'आगम' प्रमाणभूत हो सकते हैं ।

ये पाँच ज्ञान प्रमाण हैं । इनमें से अवधिज्ञानादि तीन प्रत्यक्षप्रमाण और मतिज्ञान-श्रुतज्ञान परोक्ष प्रमाण हैं । यह विभाजन पारमार्थिक दृष्टि से किया गया है । व्यावहारिक दृष्टि से इन्द्रिय से साक्षात् होनेवाला ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है । उसे सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं । मति और श्रुतज्ञान में प्रत्यक्ष,, अनुमान,

उपमान, आगम, अर्थापत्ति इ. प्रमाणों का समावेश हो जाता है । वादियों की सभा में मुख्यतः प्रत्यक्ष और अनुमान इन दो प्रमाणों का आश्रय लिया जाता है ।

अनुमान प्रमाण

अनुमान प्रमाण में प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली या सुनी गई वस्तु (यानी हेतु) पर से दूसरी वस्तु का अवश्य संबंध होने का बोध होता है ।

उदा. दूर से ध्वज या शिखर देखकर मंदिर का बोध होता है, यह अनुमान हुआ । ध्वज-शिखर का मंदिर के साथ अविनाभावी(अवश्य) संबंध है । अतः जहाँ ध्वजा होगा तो वहाँ अवश्य ही मंदिर होगा ही है । इस तरह ध्वजा देखकर मंदिर का अनुमान लगाया । अनुमान में पंचावयव-वाक्य होते हैं । प्रतिज्ञा-हेतु-उदाहरण-उपनय-निगमन ये पाँच अवयव हैं । पाँच के वाक्यों को पंचावयव कहते हैं । इसमें -

1. वाद होता है वहाँ प्रथम स्थापना की जाती है वह **प्रतिज्ञावाक्य** जैसे-"पर्वत पर अग्नि है ।"

2. इसे सिद्ध करने के लिए हेतु का उपयोग किया जाता है - उदा. "क्योंकि वहाँ धुँआ दिखाई देता है" - यह **हेतुवाक्य** ।

3. फिर व्याप्ति और **उदाहरण** दिए जाते हैं । उदा. जहाँ धुँआ होगा, वहाँ अग्नि अवश्य होगी । उदा. 'रसोईघर' यह उदाहरण वाक्य ।

इसमें व्याप्ति याने 1. अविनाभाव 2. अन्यथानु पयन्नत्व उदा. 1. 'साध्य' अग्नि और 'हेतु' धुँआ-अविनाभाव हैं । अग्नि के बिना धुँआ का भाव नहीं, सद्भाव नहीं, अतः धुँआ अग्नि का अविनाभावी संबंध हुआ । अमुक के बिना हो ही नहीं सकता । यह अविनाभावी । 2. धुँआ अग्नि का अन्यथानुपपन्न । इसमें अन्यथा=बिना, 'अनुपपन्न' याने जो घटाया नहीं जा सकता । धुँआ अग्नि के बिना नहीं हो सकता, यह **अन्यथानुपपन्न** है । यह अविनाभाव या अन्यथानुपपन्नत्व को व्याप्ति कहते हैं । अविनाभावी को व्याप्य और दूसरी संबंधित वस्तु को व्यापक कहा जाता है । धुँआ व्याप्य है और अग्नि व्यापक है । धुँए में अग्नि की व्यापकता है, व्याप्ति है । जहाँ धुँए का सद्भाव-अन्वय है वहाँ अग्नि का अवश्य सद्भाव होता है । यह धुँए में अग्नि की अन्वयव्याप्ति है ।

व्याप्य-व्यापक के बीच जो व्याप्ति को जान ले तो 1. व्याप्य से व्यापक का अनुमान हो सकता है, यह अन्वयी व्याप्ति से बोध हुआ कहा जाएगा । 1. व्यापक का अभाव हो तो व्याप्य के अभाव का ज्ञान हो सकता है । ऐसा ज्ञान व्यतिरेकी व्याप्ति से हुआ । अन्वय=संबंध सद्भाव । व्यतिरेक=इससे विपरीत विरुद्ध ।

4. व्याप्ति को उदाहरण से जानने के बाद, उपसंहार किया जाता है । उसे **उपनय** कहा जाता है । उदा' "पर्वत में अग्नि-व्याप्य धुँआ है ।" यह उपनय वाक्य हुआ ।

5. निर्णय हो वह निगमन ! उदा. 'पर्वत में अग्नि हैं ।' इसे **निगमनवाक्य** कहते हैं ।

प्रतिज्ञा, हेतु इत्यादि पाँच अवयव 'पदार्थ अनुमान' में याने अन्य में अनुमान कराने में ज़रूरी है । स्वार्थानुमान तो हेतु और निगमन दोनों से भी होता है ।

आत्मा, परलोक, कर्म वगेरे अतिन्द्रिय पदार्थो का निर्णय अनुमान प्रमाण से हो सकता है ।

अन्य दर्शन **प्रमाण** (यथार्थज्ञान) के करण को-साधन का प्रमाण कहते हैं । अगर करण प्रमाण है तो करण में प्रामाण्य आया, परंतु प्रामाण्य की बात चलती है तब उसे प्रमाकरण का नहीं परंतु प्रमा का धर्म मानते हैं । पर ऐसे कैसे हो सकता है ? प्रामाण्य तो प्रमाण का धर्म होता है । अत: प्रमाण ज्ञानकरण नहीं परंतु स्वयं ज्ञान है । इसीलिए जैन दर्शन कहता है - 'स्वपर-व्यवसायी ज्ञानं प्रमाणम्' ।

B. नवतत्त्व पदार्थ संग्रहम भाग-2

6 संवर

	संवर के 57 भेद		
समिति	5	यतिधर्म	10
गुप्ति	3	भावना	12
परिषह	22	चारित्र	5
कुल 57 भेद			

समिति यानी सम्यग् प्रवृत्ति

1. इर्यासमिति : चलते समय आँखों से आगे की साडे तीन हाथ भूमि को देखते हुए उपयोग पूर्वक चलना ।

2. भाषासमिति मुँहपत्ति का उपयोग करके निरवद्य वचन बोलना ।

सावद्य वचन में हिंसादि पाप लगे ऐसे वचन, जैसे कि आदेश के वचन, आरंभ-समारंभ की अनुमोदना के वचन, असत्य वचन, निश्चय भाषा बोलना ।

अतः साधु को कभी भी आदेश वचन, तथा निश्चयात्मक वचन नहीं बोलना चाहिए । प्रायः वर्तमान-योग, क्षेत्र स्पर्शना, जैसे वचन बोलना चाहिए ।

3. एषणासमिति - शास्त्र में बताए अनुसार 42 दोषों को टालकर आहार ग्रहण करना ।

4. आदाननिक्षेपणसमिति -वस्त्र, पात्र इ. वस्तु लेने, रखते समय विवेक से रखना, लेना, देखना, प्रमार्जन करना इसी प्रकार आसन, संथारा वगेरे बिछाते समय जमीन को अच्छी तरह से रजोहरण से पूजना ।

5. पारिष्ठापनिका समिति : मल-मूत्र, कफ, थूँक, अशुद्ध आहार, निरूपयोगी वस्त्र वगेरे को विधिपूर्वक जीव रहित स्थानपर रखना ।

गुप्ति-3

1. मनोगुप्ति : मन को अशुभ विचारों से रोकना, शुभ विचारों में प्रवृत्त करना ।

2. वचन गुप्ति : सावद्य वचन का त्याग । निरवद्य वचन में मुँहपत्ति का उपयोग करना ।

3. काय गुप्ति : काया से सावद्य क्रिया न करना । निरवद्य में काया को लगाना ।

समिति प्रवृत्ति रूप है । गुप्ति प्रवृत्ति और निवृत्ति उभय रूप हैं । इसलिए गुप्ति समिति में नियम होते हैं । जबकि समिति गुप्ति में विकल्प होते हैं ।

परिषह 22

कर्म निर्जरा करने के लिए, संयम मार्ग पर आरूढ होकर, समतापूर्वक जो भी उपसर्ग, परिषह आये उसे सहन करना । ऐसे मुख्यत: 22 परिषह कहे हैं । परिषह को अच्छी तरह समझकर जान लेना चाहिए और प्रयत्नपूर्वक पुरुषार्थ करके उन्हें जीत लेना चाहिए । परिषह के कारण कभी संयमी-जीवन पर आँच नहीं आने देनी चाहिए ।

1. क्षुधा-भूख को सहन करना पर कभी भी सदोष आहार ग्रहण करना नहीं । आहार नहीं मिला इसका आर्तध्यान भी नहीं करना ।

2. तृष्णा-प्यास को सहन करना पर सचित्त पानी या मिश्र पानी का उपयोग नहीं करना ।

3. शीत-ठंड सहन करना परंतु अकल्प वस्त्रादि या अग्नि का ताप लेने को इच्छा भी नहीं करना ।

4. उष्ण- गरमी के दिनों में चलते समय छाते की इच्छा भी नहीं करना तथा स्नान विलेपन की भी इच्छा नहीं करना । ठंडे पानी के छींटे शरीर पर लेने की भी इच्छा नहीं करना ।

5. दंश-मच्छर, जूएँ, खटमल, वगेरे जंतु दंश करे तो भी वहाँसे हटकर अन्य स्थानपर जाने की इच्छा नहीं करना । जंतुओं को कीडे मकौडों का तो द्वेष भी नहीं करना, मारने की इच्छा न करना ।

6. अचेल-वस्त्र न मिलें या जीर्ण मिले तो भी दीनता का अनुभव न करें ! मूल्यवान वस्तु की इच्छा न करें ।

7. अरति- संयम पालन में प्रतिकूल परिस्थिति आये तो उद्विग्न न बनें । शुभ भावना रखें । परिस्थिति से घबराकर संयम छोड़ने की इच्छा भी न करें ।

8. स्त्री-संयम मार्ग में स्त्री को विघ्न रूप माना है । अतः स्त्रियों की ओर रागपूर्वक दृष्टि न डाले । अंगोपांग निरखना नहीं चाहिए । उसका ध्यान करना नहीं चाहिए । स्त्री के आधीन होना नहीं चाहिए ।

9. चर्या-एक स्थान पर अधिक या हमेशा के लिए रहना नहीं । ग्रामानुग्राम विचरण करें । नवकल्पी विहार करें । विहार करने से कतराना नहीं चाहिए ।

10. नैषेधिकी-एकांत स्थान, स्मशान जैसे स्थान पर रहना नहीं चाहिए । अथवा स्त्री, नपुंसक, पशु इ. रहित स्थान में रहें। रहने का स्थान सुविधाजनक न मिले तो भी उद्वेग न करें ।

11. शय्या-ऊँची-नीची ऐसी प्रतिकूल शय्या (संथारा की जगह) मिले तो भी नाराजी, घृणा; अरुची व्यक्त न करना, या मन में भी वैसे भाव भी न लाना । वैसी बहुत सुंदर सुविधापूर्ण स्थान मिले तो भी हर्षित नहीं होना । दोनों परिस्थितियों में मन का संतुलन बनाए रखें ।

12. आक्रोश-कोई तिरस्कार करें, अपमानित करें तो भी उस पर द्वेष नहीं करना । परंतु उसे तो अपना उपकारी ही मानना है ।

13. वध-कोई मरने-मारने पर उतर जाय या मार ही डालें तो भी उसपर द्वेष न करें । इतनाही नहीं मारनेवाले के प्रति मन में यत्किंचित् भी द्वेष भाव न करना ।

14. याचना-गोचरी, पानी, वस्त्रादि की याचना करने में लज्जा का अनुभव न करें ।

15. अलाभ-याचना करने पर भी वस्तु न मिले तो "लाभांतराय कर्म का उदय है" ऐसा विचार कर उद्वेग न करना ।

16. रोग-शरीर में रोग उत्पन्न हो जाय तो स्थविरकल्पी मुनि शास्त्र विधिनुसार निर्दोष उपचार करें । फिर भी रोग दूर न हो तो भी धैर्य धारण कर अपने ही कर्मों का उदय है ऐसा सोचकर शांति से सहन करें ।

17. तृण-तृण घास-फूस का बिछौना हो और वे शरीर को चूभे अथवा बिछौना कठिन हो तो वह भी चूभता है । तब भी उद्वेग न करें ।

20. प्रज्ञा-बहुत बुद्धिमान या ज्ञानी हैं तो लोग प्रशंसा करते हैं । प्रशंसा

सुनकर गर्व या अभिमान न करें। बल्कि ऐसा विचार करें कि मुझसे कई गुना अधिक विद्वान्, ज्ञानी हो चुके हैं मैं कौन ?

21. अज्ञान–अल्पबुद्धि या अज्ञान हो तो भी उद्वेग न करें । ज्ञान प्राप्ति में आलस्य न करें । ज्ञानावरणीय कर्म का उदय है ऐसा विचार कर संयम भाव में लीन रहें ।

22. सम्यक्त्व–कष्ट, दुःख या उपसर्ग आये, अथवा शास्त्र के सूक्ष्म अर्थ समझ में न आये, अन्यदर्शन के चमत्कार को देखकर भी प्रभावित न होना, बल्कि सर्वज्ञभाषित जिन धर्म से विचलित न होना ।

यति धर्म–10 प्रकार

1. क्षमा–क्रोध का अभाव ।

2. मृदुता–नम्रता, अभिमान का अभाव ।

3. आर्जव–सरलता, कपट का अभाव ।

4. मुक्ति–निर्लोभता, लोभ का अभाव ।

5. तप–इच्छा का निरोध करना याने तप ।

6. संयम–पाँच महाव्रत, पाँच इन्द्रियों का निग्रह, ४ कषाय पर विजय, तीन दंड की निवृत्ति ।

7. सत्य–प्रिय, हितकारी(पथ्य), तथ्य(सत्य), वचन बोलना ।

8. शौच–मन, वचन, काया की पवित्रता ।

9. अकिंचनता–किसी भी वस्तु पर ममत्व भाव न रखना ।

20. ब्रह्मचर्य–मैथुन का मन–वचन–काया से त्याग ।

12 भावनाएँ

1. अनित्य भावना–लक्ष्मी, परिवार, शरीर इ. जगत् के तमाम पदार्थ अनित्य हैं, नाशवंत हैं ऐसी भावना भाना ।

2. अशरण भावना–रोग, मृत्यु इ. पीडा के समय जीव को संसार में किसी की शरण नहीं ऐसी भावना करना ।

3. संसार भावना–84 लाख योनि में जीव का भटकना चालु है । और संसार

में प्रत्येक जीव के साथ विविध प्रकार के संबंध जुड़े हैं, जुड़ते हैं । ऐसा चिंतन करना ।

4. एकत्व भावना-जीव अकेला जन्मता है, अकेला मरता है और अकेले ही कर्म भोगता है । ऐसा चिंतन करना ।

5. अन्यत्व भावना-कुटुम्ब, परिवार, धन, मकान, इतना ही नहीं यह शरीर भी मेरा नहीं, पराया है ऐसी भावना भाना ।

6. अशुचि भावना-यह शरीर, रुधिर, माँस, हड्डियाँ इ. अशुचि पदार्थ से बना है, मल-मूत्र से भरा हुआ है । ऐसे शरीर पर क्या आसक्ति रखना ?

7. आश्रव भावना-42 प्रकार के आश्रवों से आत्मा में कर्म प्रति समय आते हैं इन कर्मों से आत्मा भारभूत बनती है ऐसा चिंतन करना ।

8. संवर भावना-समिति, गुप्ति वगेरे संवर के 57 भेदों का वारंवार चिंतन करना ।

9. निर्जरा भावना-12 प्रकार की निर्जरा का चिंतन करना ।

10. लोकस्वभाव भावना-14 राज लोक उसमें 6 द्रव्य, देवता, नारकी इत्यादि के स्थान, असंख्य द्वीपसमुद्र इ. का विचार करना ।

11. बोधिदुर्लभ भावना-अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण करनेवाले इस जीव को अनंतीबार चक्रवर्तीपन, देवतापन, राजा-महाराजापन वगेरे मिलना बहुत सुलभ है, परंतु सम्यक्त्वरूपी रत्न प्राप्त होना अति दुर्लभ है, ऐसी भावना भाना । अत: सम्यक्त्वरूपी रत्न प्राप्त करने के लिए खूब पुरुषार्थ करना, सम्यक्त्व प्राप्त हो गया हो तो उसे प्रयत्नपूर्वक संजोये रखना ।

12. धर्म भावना-धर्म से ही संसार में वास्तविक सुख मिलता है । सूर्य-चंद्र इ. भी धर्म के प्रभाव से ही प्रकाशित रहते हैं । अनंत आलोक में भी 14 राजलोक धर्म के प्रभाव से टिके हुए हैं । ऐसा चिंतन करना और उस पर दृढ़ श्रद्धा रखना ।

चारित्र पाँच

1. सामायिक-सम=ज्ञान, दर्शन, चारित्र । **आय**=लाभ ।

जिससे ज्ञान, दर्शन, चारित्र का लाभ मिले यह सामायिक । सर्व सावद्य योग का त्याग यह सामायिक है । श्रावक के लिए दो घडी की सामायिक, पौषध तथा

प्रथम तीर्थंकर भगवान और अंतिम 24 वे तीर्थंकर भगवान के साधु को छोटी दीक्षा से बडी दीक्षा तक के चारित्र को "इत्वरिक(इत्वकथिक) सामायिक चारित्र" कहा जाता है । और बीच के बाईस तीर्थंकर म. के साधुओं को दीक्षा से जिंदगी के अंत तक "यावत्कथिक सामायिक चारित्र" कहा जाता है ।

2. छेदोपस्थापनीय चारित्र-पूर्व पर्याय का छेद करके जो महाव्रत दिए जाते हैं, उसे छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं । (यह चारित्र भरत, ऐरावत क्षेत्र के प्रथम एवं चरम तीर्थंकरों के तीर्थ में ही होता है शेष तीर्थंकरों के तीर्थ में नहीं होता ।)

1. छोटी दीक्षावालों को बडी दीक्षा दी जाती है तब से अर्थात् १ले और अंतिम भगवान के साधु को बडी दीक्षा से यह चारित्र होता है ।

2. पार्श्वनाथ भगवान के साधु चार व्रतवाला शासन छोडकर पाँच महाव्रतधारी महावीर भगवान के शासन को स्वीकारते हैं तब उन्हें यह चारित्र होता है ।

3. मुनि के मूलगुण का घात हो जाय तब प्रायश्चित्त रूप में पूर्व पर्याय का छेद कर पुन: व्रत दिए जाते हैं ।

3. परिहार विशुद्धि-जिस चारित्र में परिहार तप विशेष से कर्म निर्जरा रूप शुद्धि होती है, उसे परिहार विशुद्धि चारित्र कहते हैं ।

इसमें एक साथ नौ का समुदाय होता है ।

4. निर्विशमानक=	तप करनेवाले
4. अनुचारक=	सेवा करनेवाले
1. वाचनाचार्य=	वाचना देनेवाले
9	

तप	जघन्य	मध्यम	उत्कृष्ट
1) ग्रीष्मकाल(गरमी)	चोथ	छठ	अट्ठम
2) शिशिर(ठंडी)	छठ	अट्ठम	दशम
3) वर्षा (चातुर्मास)	अट्ठम	दशम	द्वादश

पारना अभिग्रहपूर्वक आयंबिलसे करना । अनुचारक रोज आयंबिल करते हैं ।

इस प्रकार छ महीनों तक तप करना, बाद में सेवा करनेवाले तप करते हैं, तप करनेवाले सेवा करते हैं, वाचनाचार्य वाचना देते हैं । इस प्रकार पुन: छ महीने

करना । बाद में वाचनाचार्य तप करते हैं । एक जन वाचनाचार्य का कार्य करता है । शेष सेवा करते हैं । इस प्रकार अठारह महीने में यह चारित्रपूर्ण होता है । उसके बाद परिहार कल्प करते हैं अथवा जिनकल्पी बनते हैं अथवा गच्छ में प्रवेश करते हैं ।

भरतक्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र में यह चारित्र होता है । महाविदेह क्षेत्र में नहीं होता ।

यह चारित्र प्रथम संघयन को पूर्वधर लब्धिवाले को होता है । स्त्री को यह चारित्र नहीं होता ।

4. सूक्ष्म संपराय-सम्पराय का अर्थ कषाय होता है । जिस चारित्र में सूक्ष्म सम्पराय अर्थात् लोभ का सूक्ष्म अंश रहता है उसे सूक्ष्म संपराय चारित्र कहते हैं । इसमें क्रोध, मान, माया ये तीन कषाय नहीं होते ।

5. यथाख्यात-सर्वथा कषाय का उदय न होने से अतिचार रहित पारमार्थिक रूप से प्रसिद्ध चारित्र यथाख्यान चारित्र कहलाता है ।

चारित्र	**गुणस्थान**
सामायिक	6, 7, 8, 9
छेदोपस्थापनीय	6, 7, 8, 9
परिहार विशुद्धि	6, 7
सूक्ष्म संपराय	10
यथाख्यात	11, 12, 13, 14

7 निर्जरा

निर्जरा-आत्मा पर लगे हुए कर्मों को देशतः नष्ट करना निर्जरा है । उपवास करना, भूख से कम खाना, स्वादिष्ट पदार्थों का त्याग, दूसरों की सेवा करना, ज्ञान की उपासना करना आदि से कर्मों की निर्जरा होती है ।

बारह प्रकार के तप से कर्म की निर्जरा होती है । तात्पर्य यह कि बारह प्रकार के तप की निर्जरा है । तप के दो प्रकार :-

1. आभ्यंतर 2. बाह्य तप ।

बाह्य तप 6 प्रकार के

1. अनशन-चार प्रकार के या तीन प्रकार के आहार का त्याग करना । इसके दो प्रकार ।

(अ) इत्वर-अल्पकाल के लिए आहार का त्याग नवकारशी, पोरसी, एकासन, उपवास वगैरह इत्वर अनशन है ।

(ब) यावत्कथिक-जीवन के अंत तक चार प्रकार के आहार का त्याग करना ।

2. **उणोदरी**-भोजन की अधिक रुचि होने पर भी कम भोजन करना । अर्थात् भूख से कम आहार लेना । उसी प्रकार साधु उपकरण सीमित रखें ।

3. **वृत्तिसंक्षेप**-शुद्ध आहार की गवेषणा करना । द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से गोचरी वगेरे का अभिग्रह धारण करना ।

(अे) द्रव्य से-अमुक द्रव्य से अधिक का उपयोग नहीं करना ।

(बी) क्षेत्र से-अमुक, मर्यादित घर से अधिक घरों से गोचरी न लेना ।

(सी) काल से-समय की मर्यादा धारण कर दोपहर या थोड़े समय में जो मिले वही आहार ले आना ।

(डी) भाव से-रोता हुआ बालक या गुस्से से भरे हुए व्यक्ति या दीक्षार्थी हो वहाँ से आहार मिले तो लूँगा ऐसा अभिग्रह धारण करना ।

4. **रसत्याग**-विगयादि का त्याग करना, स्वाद पर विजय प्राप्त करना । दूध, दही, घी-तेल, मिठाईयाँ, तली हुई चीजें ये छ विगय हैं । और मध, मांस, मक्खन, शराब ये चार महाविगय हैं । महाविगय का सर्वथा त्याग करना चाहिए । शेष छ विगय का यथासंभव त्याग करना चाहिए ।

5. **कायक्लेश**-शरीर को विवेकपूर्वक कष्ट देना । लोच करना, विहार करना, आतापना लेना इ. ।

6. **संलिनता**-इंद्रियों को अशुभ क्रिया से रोकना । कषाय तथा मन-वचन-काया के अशुभ योगों को रोकना । बुरे स्थान का त्याग कर अच्छे स्थान में रहना ।

ये तप जानने योग्य हैं । बाह्य शरीर, इन्द्रियों पर असर करते हैं । अतः इन्हें बाह्य तप कहते हैं ।

आभ्यंतर तप के 6 प्रकार

1. **प्रायश्चित्त**-लगे हुए दोषों की आलोचना करके प्रायश्चित्त लेकर आत्मा को शुद्ध करना ।

2. विनय-ज्ञान-ज्ञानी, दर्शन-दर्शनी, आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, गणी, रत्नाधिक इ. की भक्ति, बहुमान, सत्कार, सम्मान तथा अनाशातना (आशातना न करना)

3. वैयावच्च-आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, गणी, तपस्वी, साधर्मिक, कुल गण (समुदाय) संघ, शैक्षक (नव दिक्षित) को आहार, वस्त्र, पात्र, स्थान, दवा इ. से भक्ति करना ।

4. स्वाध्याय-पांच प्रकार के -

1. **वाचना**-पढ़ना, पढ़ाना ।
2. **पृच्छना**-शंका का समाधान करना ।
3. **परावर्तना**-कंठस्थ करना, पुनरार्वतन करना (ज्ञान)
4. **अनुप्रेक्षा**-पढ़े हुए ज्ञान का चिंतन करना ।
5. **धर्मकथा**-धर्म का उपदेश देना ।

5. ध्यान-योग की एकाग्रता तथा योग निरोध । ध्यान के चार प्रकार -

1. आर्त्तध्यान 2. रौद्रध्यान
3. धर्मध्यान 4. शुक्लध्यान

1. आर्त्तध्यान के चार प्रकार :

1. इष्ट वियोग की चिंता ।
2. अनिष्ट संयोग की चिंता ।
3. रोग की चिंता ।
4. तप के फल का नियाणा करना ।

1. रौद्र ध्यान के चार प्रकार

1. जीव हिंसा का तीव्र चिंतन ।
2. गाढ असत्य की विचारणा ।
3. चोरी का तीव्र चिंतन ।
4. परिग्रह के रक्षण की तीव्र चिंता ।

(आर्तध्यान और रौद्रध्यान से संसार का परिभ्रमण बढ़ता है । अतः निर्जरा तत्त्व में इनको समाविष्ट नहीं किया जा सकता । केवल उनका स्वरूप जान लेना आवश्यक है ।)

1. धर्मध्यान के चार प्रकार –

1. भगवान की आज्ञा की विचारणा करना यानी **आज्ञा विचय** ।

2. कर्म के फल की विचारणा करना यानी **विपाक विचय** ।

3. विषय, कषाय इ. से नुकसान की विचारणा यानी **अपाय विचय** ।

4. चौदह राजलोक के स्वरूप की विचारणा यानी **संस्थान विचय** ।

4. शुक्ल ध्यान के चार प्रकार

1. पूर्वधर महर्षियों ने पूर्वश्रुत के आधार से अलग-अलग द्रव्य पर्यायों का अर्थ व्यंजन (शब्द) और योग की परावृत्तिवाला ध्यान यानी **पृथकत्ववितर्नी सविचार** ।

2. पूर्वधर महर्षियों ने पूर्वश्रुत के आधार से द्रव्य के एक पर्याय का अर्थ व्यंजन और योग की परावृत्ति बिना अभेद प्रधान चिंतन यानी **एकत्व वितर्क अविचार** ।

3. केवलज्ञानी भगवंत को जब मन, वचन योग का तथा श्वासोच्छ्वास का निरोध होने के बाद सूक्ष्म काययोग के आलंबन से बाहर काययोग का निरोध करते हैं-वह **सूक्ष्म क्रिया अप्रतिपाति** ।

4. मन, वचन, काया के योग से रहित केवलीज्ञानी भगवंत की शैलेशी अवस्था होती है वह **व्युपरतक्रिया अनिवृत्ति** ।

आर्तध्यान से तिर्यंच गति मिलती है ।

रौद्रध्यान से नरकगति ।

धर्मध्यान से देवगति ।

शुक्लध्यान से मोक्ष ।

6. काया इ.के व्यापार को त्याग कर अमुक निश्चित प्रमाण के समय तक ध्यान में रहना ।

(8) बंध

बंध-आत्मा के साथ कर्म पुद्गलों के मिलने को बंध कहते हैं ।

प्रत्येक संसारी जीव मिथ्यात्वादि के कारण, जिस अवगाहना में रहता है, उसमें जो कार्मण वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करता है । जैसे दूध और पानी, अथवा लोह पिण्ड और अग्नि एकमेक हो जाते हैं वैसे ही आत्मप्रदेश और कर्म पुद्गल एकमेक होकर बंधे, उसे बंध कहते हैं ।

कर्म बंध के चार प्रकार

1. प्रकृति बंध-कर्म बंध के समय कुछ कर्म ज्ञान गुण को आवृत्त करते हैं, कुछ सुख देते हैं, कुछ उच्च कुल में जन्म देते हैं ।

ऐसे कर्म का स्वभाव निश्चित हों वह प्रकृति बंध ।

2. स्थिति बंध-कर्म बंधन के समय कर्म आत्मा के साथ रहने का जो काल परिमाण निश्चित्त होता है वह स्थिति बंध ।

3. रसबंध(अनुभाग बंध) - आठ कर्मों के तीव्र मंदादि रस को रसबंध या अनुभाग बंध कहते हैं ।

1. प्रदेशबंध-कर्म पुद्‌गलों के दल का आत्मा के साथ बंध होना 'प्रवेश बंध' कहा जाता है ।

लड्डू का दृष्टांत

कोई लड्डू बहुत प्रकार के द्रव्यों के संयोग से उत्पन्न हुआ । वह वात, पित्त और कफ को जिस स्वरूप से नष्ट करे, उसे प्रकृति(स्वरूप) 'बंध' कहते हैं । वही लड्डू पक्ष, मास, दो मास आदि तक उसी स्वरूप में रहे उसे "स्थिति बंध" कहते हैं । वही लड्डू तीखे, कडवे, कषैले, खट्टे और मीठे रस युक्त लड्डू हो, उसे अनुभाग बंध(रसबंध) कहते हैं । वही लड्डू थोडा परिमाण(वजन) का बन्धा हुआ-छोटा होता है और अधिक परिणाम का (वजन) बन्धा हुआ बडा होता है । उसे प्रदेशबंध कहते हैं ।

प्रकृति बन्ध और प्रदेश बंध का कारण योग है और स्थिति तथा (रस) अनुभाग बंध का कारण कषाय है ।

प्रकृतिबंध

कर्म की प्रकृतियाँ आठ हैं, उनके 158 भेद हैं

नं.	कर्म का नाम	व्याख्या	कौन से गुणपर आवरण	उत्तर भेद	दृष्टांत
1..	ज्ञानावरण	वस्तु के विशेष बोध पर जो आवरण आता है	अनंतज्ञान	5	आँखों पर पट्टी जैसा
2.	दर्शनावरण	वस्तु के सामान्य बोधरूप दर्शन को ढँकता है ।	अनंतदर्शन	9	द्वारपाल जैसा
3.	वेदनीय	सुख दु:ख का अनुभव	अव्याबाध सुख	2	मध से लिप्त तलवार जैसा
4.	मोहनीय	जीव को सत्य-असत्य के विवेक से रहित रखे	अनंत चारित्र्य	28	शराब पीने जैसा
5.	आयुष्य	भव भ्रमण में बाँध कर रखता है	अक्षय स्थिति	4	बेडी जैसा
6.	नाम	जीव को गति इ. पर्याय का अनुमान कराता है ।	अरूपीपन	103	चित्रकार जैसा
7.	गोत्र	उच्च, नीच, कुल का अनुभव	अगुरुलघुता	2	कुम्हार जैसा
8.	अंतराय	जीव को दान, लाभ, भोग इत्यादि में रुकावट डाले ।	अनंतशक्ति	5	खजांची जैसा

स्थिति बंध

नं.	कर्म	उत्कृष्ट स्थिति	जघन्य स्थिति
1.	ज्ञानावरण	30 कोडाकोडी सागरोपम	अंतर्मुहूर्त
2.	दर्शनावरण	30 कोडाकोडी सागरोपम	अंतर्मुहूर्त
3.	वेदनीय	30 कोडाकोडी सागरोपम	12 मुहूर्त
4.	मोहनीय	70 कोडाकोडी सागरोपम	अंतर्मुहूर्त
5.	आयुष्य	33 सागरोपम	अंतर्मुहूर्त
6.	नाम	20 कोडा कोडी सागरोपम	8 मुहूर्त
7.	गोत्र	20 कोडाकोडी सागरोपम	8 मुर्हर्त
8.	अंतराय	30 कोडाकोडी सागरोपम	अंतर्मुहूर्त

9 मोक्ष

जब आत्मा सर्वथा कर्म रहित होकर जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है उसे मोक्ष कहा जाता है । आत्मा का शुद्ध रूप प्रकट होता है । संपूर्णत: कर्मों से मुक्त हुआ जीव उर्ध्वगति से एक समय मात्र में सिद्ध शिला पर लोक के अंत तक पहुँच जाता है । वहाँ अन्य अनंत सिद्धात्मा होते हैं । वहाँ पहुँचा हुआ जीव पुनश्च संसार परिभ्रमण कभी नहीं करता । वहाँ सिद्धात्मा प्रति समय जगत के सर्व पदार्थों की तीनों काल की पर्याय को देखते हैं । जानते हैं वे अनंत सुख में विराजित हैं । जन्म, जरा, मरण, भूख, तृष्णा, रोग, चिंता, दरिद्रता, शोक, क्लेश इ. संसार के किसीभी प्रकार का दु:ख इन आत्माओं को कभी भी अब भुगतने नहीं होते । जन्म का कारण कर्म होता है, जब सारे कर्मों का ही नाश हो गया तब मोक्ष में पहुँची आत्माओं को जन्म लेना ही नहीं पड़ता । सम्यग्ज्ञानादि से मोक्ष की साधना होती है । इस साधना से आत्म पूर्ण रूप से शुद्ध होकर परमात्मपद प्राप्त कर लेता है और सदा के लिए परम सुखी बन जाता है ।

मोक्ष तत्त्व की नौ अनुयोग द्वार से विचारणा करना है । सत्पद, द्रव्य, क्षेत्र, स्पर्शना, काल, अंतर, भाग, भाव, अल्पबहुत्व ।

सत्पद=अस्तित्व ।

प्रश्न : मोक्ष है या नहीं ? इसका विचार ।

उत्तर : मोक्ष यह शुद्ध पद वाच्य शब्द होने से मोक्ष है ।

शुद्ध=अन्वर्थयुक्त एक पद ।

कौन-कौन से मार्ग से मोक्ष में जाया जा सकता है ?

मूल मार्ग 14, उत्तर मार्ग 62 हैं ।

1. **गति-4** नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति, देवगति ।

2. **इन्द्रिय-5** एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय ।

3. **काय-6** पृथ्वीकाय, अपकाय, तेऊकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय ।

4. **योग-3** मनयोग, वचनयोग, काययोग ।

5. **वेद-3** पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसकवेद ।

6. **कषाय-4** क्रोध, मान, माया, लोभ ।

7. **ज्ञान 8 :** मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्यवज्ञान, केवलज्ञान, मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभंगज्ञान ।

8. **संयम-7 :** सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसंपराय, यथाख्यात, देशविरति, अविरति ।

9. **दर्शन-4 :** चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन ।

10. **लेश्या-6:** कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या ।

11. **भव्य-3 :** भव्य, अभव्य, जातिभव्य ।

12. **सम्यक्त्व-6 :** क्षयोपक्षमिक, सम्यक्त्व, उपशमसम्यक्त्व, क्षायिक-सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, सास्वादन, मिश्र ।

13. **संज्ञी-2 :** संज्ञी, असंज्ञी ।

14. **आहारी-2 :** आहारी, अनाहारी ।

मनुष्यगति, पंचेन्द्रियजाति, त्रसकाय, केवलज्ञान, यथाख्यात चारित्र, केवलदर्शन, भव्य, संज्ञी, अनाहारी, क्षायिक सम्यक्त्व **इन दस मार्गों से मोक्ष प्राप्त होता है ।**

द्रव्य संख्या प्रश्न : मोक्ष में जीवों की संख्या कितनी है ?

उत्तर : मोक्ष में अनंत जीव हैं ।

क्षेत्र प्रश्न : मोक्ष में जीव कितने क्षेत्र में हैं ?

उत्तर-एक जीव लोक के असंख्यातवे भाग में है । सर्व जीव लोक के असंख्यातवे भाग में हैं ।

स्पर्शना-क्षेत्र से कुछ अधिक है ।

काल - एक जीव आदि अनंत और सर्व जीवों की अपेक्षा से अनादि अनंत ।

अंतर-नहीं । (मोक्ष में जाने के बाद पुन: संसार में आना और पुन: मोक्ष में जाना ऐसा नहीं होता । संसार परिभ्रमण, भव की समाप्ति होना यानी ही मोक्ष)

भाग : सर्व जीवों के अनंतवे भागमें मोक्ष के जीव हैं ।

भाव : ज्ञान, दर्शन, क्षायिक भाव होता है । जीवत्व पारिणामिक भाव होता है ।

अल्पबहुत्व : नपुंसक सिद्ध कम, स्त्री-सिद्ध संख्यात गुणा, पुरुषसिद्ध संख्यात गुणा ।

सिद्ध के पंद्रह भेद

1. जिन सिद्ध-तीर्थंकर मोक्ष जायें उदा. ऋषभदेव इ. तीर्थंकर भगवंत ।

2. अजिन सिद्ध-तीर्थंकर पद बिना, सामान्य केवली बनकर जो मोक्ष जाते हैं । उदा. गणधर भगवंत इ.

3. तीर्थ सिद्ध-तीर्थ (शासन) चालू हों तब मोक्ष में जायें उदा. जंबुस्वामी इ.

4. अतीर्थ सिद्ध-तीर्थ की स्थापना के पूर्व अथवा तीर्थ के विच्छेद के बाद मोक्ष जायें । उदा. मरुदेवी माता ।

5. स्वलिंग सिद्ध-साधु वेश में केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में जायें ।

6. गृहस्थलिंग सिद्ध-गृहस्थ अवस्था में केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में जायें । उदा. भरतचक्रवर्ती वगैरह ।

7. अन्यलिंग सिद्ध-तापस इ. अन्यदर्शन के वेष में केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में जायें । उदा. वल्कलचीरी वगैरह।

8. स्त्रीसिद्ध-स्त्री लिंग में मोक्ष में जायें। उदा. चंदनबाला इ. ।

9. पुरुषसिद्ध-पुरुष लिंग में मोक्ष में जायें । उदा. गौतम स्वामी इ. ।

10. नपुंसकसिद्ध-किसी भी प्रकार के निमित्त बिना स्वयं बोध पाकर मोक्ष में जायें । उदा. कपिल इ. ।

11. प्रत्येक बुद्ध-निमित्त से बोध पाकर स्वयं ही मोक्ष जायें । उदा. करकंडु इ. ।

12. बुद्धबोधित सिद्ध-किसी से बोध पाकर मोक्ष जायें ।

13. एक सिद्ध-एक समय में एक ही मोक्ष जायें । उदा. महावीर स्वामी ।

14. अनेकसिद्ध-एक समय में अनेक मोक्ष जायें । उदा. ऋषभदेव स्वामी ।

एक समय में अधिक से अधिक 108 जीव मोक्ष जायें

1 से 32 जीव	8 समय तक सतत मोक्ष जायें फिर अवश्य अंतर पडे ।
33 से 48 जीव	7 समय तक सतत मोक्ष जायें, पश्चात् अवश्य अंतर पडता है ।
49 से 60 जीव	6 समय तक सतत मोक्ष जायें, बाद में अवश्य अंतर पड़ता है ।
61 से 72 जीव	5 समय तक सतत मोक्ष जायें, फिर अवश्य अंतर पड़ता है ।
73 से 84 जीव	4 समय तक सतत मोक्ष जायें, तदनंतर अवश्य अंतर पड़ता है ।
85 से 96 जीव	3 समय तक सतत मोक्ष जायें, बाद में अवश्य अंतर पड़ता है ।
97 से 102 जीव	2 समय तक सतत मोक्ष जायें फिर अवश्य अंतर पड़ता है ।
103 से 108 जीव	1 समय में मोक्ष जायें, फिर अवश्य अंतर पड़ता है ।

प्रश्न : आज तक कितने जीव मोक्ष गये हैं ?

उत्तर : एक निगोद में जितने जीव हैं उनके अनंतवे भाग जितने ही जीव मोक्ष गए हैं । भविष्य में भी जब-जब केवलज्ञानी भगवंत को कोई पूछेंगे कि कितने जीव मोक्ष में गए हैं ? तब भी केवलज्ञानी भगवंत का यही ज़वाब होगा कि एक निगोद के अनंतवे भाग के जीव मोक्ष गए हैं ।

जो जीवादि नवतत्त्वों को जानते हैं उनमें सम्यक्त्व होता है । जो नहीं जानते फिर भी नवतत्त्वों में श्रद्धा हैं तो उनमें भी सम्यक्त्व अवश्य होता है ।

"जिनेश्वर भगवान के वचन कदापि असत्य हो ही नहीं सकते" । ऐसी जिनकी आस्था, श्रद्धा होती है उनका समकित निश्चय दृढ़ है ऐसा जानना ।

जिन्हें अन्तर्मुहूर्त में भी समकित का स्पर्श हो जाय तो वह जीव अर्धपुद्‌गल परावर्त्तन से अधिक काल संसार में परिभ्रमण नहीं करता, तात्पर्य कि उतने समय में उसे अवश्य मोक्ष मिलेगा ही ।

इति श्री नवतत्त्व पदार्थ संग्रह समाप्त

C. अनेकान्तवाद (स्याद्वाद) सप्तभंगी अनुयोग

जैन दर्शन अनेकांतवादी दर्शन है । अन्य दर्शनों के समान एकांतवादी नहीं है ।

एकांत यानी प्रत्येक वस्तु के धर्म को एक ही दृष्टि से देखना, विचार करना, परखना उसे ही सिद्धांत मान लेना, निर्णय कर लेना । सत् ऐसे प्रतिपक्षी धर्म का इन्कार, निषेध करना । उदा. यहाँ पूर्वजन्म का स्मरण होता है, यह बताता है कि गतजन्म में जो आत्मा थीं वह आत्मा यहाँ भी है । देह नाशवंत है, परंतु आत्मा नित्य है । अनेकान्तवादी आत्मा को अनित्य नहीं मानेंगे । चाहे वह पूर्व की आत्मा मानव आत्मा बनी और देवात्मा भी हुई । अन्य दृष्टिसे सोचना ही नहीं "ऐसा ही है" मानना यानी एकांतवाद ।

अनेकान्त यानी यह धर्म भी है और दुसरी अपेक्षासे घटता उसका प्रतिस्पर्धा धर्म भी होने का निर्णय या सिद्धांत । उदा० एकांत मतसे आत्मा नित्य है यानी वह नित्य ही है, अनित्य नहीं है । अनेकांत के मतसे नित्य भी है और अनित्य भी है । अर्थात नित्यानित्य है । यह अनेकांतवादी परिस्थिति ये कोई संशय अवस्था या अचोक्कस अवस्था नहीं है परंतु असंदिग्ध अवस्था है क्योंकि दोनोंमें नित्य है वह निश्चितरुपसे और निश्चितरुपसे नित्य ही है; ऐसे अनित्य भी है वही ही निश्चित और चोक्कसरुपसे अनित्य ही है ।

प्रश्न : एक ही वस्तु नित्य भी और अनित्य भी यह कैसे ? दोनों विरोधी विधान हों विरोधी धर्म एक साथ कैसे रह सकते हैं ?

उत्तर : वस्तु के दो रूप हैं । 1. मूलरूप 2. अवस्थारूप ।

वस्तु मूल रूप में हमेशा रहती है । याने 'नित्य' है । स्थिर है । परंतु अवस्था रूप में हमेशा नहीं रहती । स्थिर नहीं रहती । अनित्य है उदा. सुवर्ण सुवर्ण के रूप में हमेशा विद्यमान रहेगा परंतु लगडी के या कडे के रूप में हमेशा नहीं रहता ।

अवस्था में परिवर्तन होता रहता है । यानी अवस्थारूप की दृष्टि से अनित्य है । निश्चित ही नित्यत्व और अनित्यत्व एक दूसरे के विरोधी शब्द हैं । दोनों का वास्तव्य एक साथ नहीं हो सकता । परंतु एक ही अपेक्षा से देखेंगे तो साथ नहीं रह सकते । परंतु अलग-अलग अपेक्षा से एक ही स्थानपर साथ रह सकते हैं । उदा. राम पिता दशरथ की अपेक्षा से उनका पुत्र है । लवकुश के राम पिता हैं ना ? अतः राम में पुत्रत्व-पितृत्व दोनों एक साथ है । वैसे ही सुवर्ण मूल सुवर्ण द्रव्य की अपेक्षा से नित्य-कायम है किंतु नेकलेस, अंगूठी, माला इत्यादि की अपेक्षा से कायम नहीं अनित्य है । इस प्रकार सुवर्ण में नित्यत्व अनित्यत्व दोनों हैं ।

आत्मा, जीव रूप में नित्य है, परंतु मनुष्य रूप में नित्य नहीं, कायम नहीं । मनुष्य के रूप में तो वह अस्थिर-अनित्य है ऐसा ही कहना पडेगा । इस प्रकार अलग-अलग अपेक्षा से अलग-अलग धर्म एक ही वस्तु में हो सकते हैं । परस्पर विरुद्ध धर्म भी हो सकते हैं । उदा. पानी से आधा भरा ग्लास भरा हुआ भी है और खाली भी है । अतः एकांत एक ही धर्म होने का दावा करना गलत है ।

तात्पर्य वस्तु नित्य है, एक है, इ. निरपेक्षता से सर्व अपेक्षा से नहीं, परंतु कथंचित याने अमुक अपेक्षा से-इस तरह अनेकांतवाद सिद्धांत को कथंचित्वाद, स्याद्वाद, सापेक्षवाद भी कहा जाता है ।

स्याद् याने कथंचिद् अर्थात् अमुक अपेक्षा से वैसा-वैसा, धर्म या परिस्थिति प्रतिवादन याने स्याद्वाद (एकांत दृष्टि से नहीं । अनेकांत दृष्टि से देखना या बोलना इसमें प्रामाणिकता है । अतः अनेकांतवाद का सिद्धांत ही प्रामाणिक है । जैन दर्शन अनेकांतवादी, स्याद्वादी सापेक्षतावादी है । प्रसिद्ध वैज्ञानिक आइन्स्टाइन ने भी सूक्ष्म विचार करने पर सापेक्षता का सिद्धान्त स्वीकार किया है ।

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य

किसी भी वस्तु को सापेक्ष दृष्टि से देखेंगे तो ही उसका यथार्थ रूप समझ में आता है । क्योंकि एक वस्तु का अनेक से संबंध होता है । वैसे ही इसमें मूल स्वरूप और नई-नई अवस्था याने द्रव्यमान और पर्याय ऐसी दो स्थितियाँ होती है । द्रव्यरूप से यह ध्रुव(कायम) रहते हैं और विकल्परूप से उत्पन्न होते हैं, तथा नाश होते हैं ।

कपड़े का पहले थान होता है । उस वस्त्र से कोट, कमीज वगैरह सीते हैं । तब यह कपड़ा वस्त्र द्रव्य के रूप में तो मौजूद है परंतु धागे-पर्याय रूप में नाश हुआ । कोट कमीज इत्यादि विकल्प के रूप में उत्पन्न है।

कोई व्यक्ति क्लर्क-विकल्परूप से अमलदार बना, विकल्प बदल गया । व्यक्ति के रूप में तो द्रव्यरूप से मोजूद है मात्र विकल्प बदला । कोई नई वस्तु दूसरे ही क्षण बदलकर पुरानी अतीत में चली जाती है । परंतु वस्तुरुप में वही मूल रूप में होती है । इस प्रकार वस्तु में विकल्परूप से उत्पत्ति, विनाश होता रहता है और द्रव्यरूप से ध्रौव्य स्थिर रहती है ।

ये तो सामान्य दृष्टांत हैं । वास्तविक रूप से तो प्रत्येक पदार्थ क्षणभंगूर है । यह बात प्रभु ने केवलज्ञान से देखा । और ध्यान से अनुभव किया । आज का विज्ञान इस बात को स्वीकार करता है । हर अणु के अंदर स्थिर परमाणु हर क्षण उत्पन्न होता है और नष्ट होता रहता है । फिर भी वस्तु, वस्तु स्वरूप में हमें वैसी ही दिखाई देती है । यह बाहर से दिखाई दे वह ध्रौव्य और अंदर से टूटना और उत्पन्न होना वह उत्पाद-व्यय ।

पूरे विश्व की यही स्थिति है । सदैव विद्यमान रहनेवाला आकाश भी एकांत नित्य ही है, ऐसा नहीं । वह अनित्य भी है । आकाश घटाकार रूप से अनित्य हैं । पानी से भरे बादल जब बरस जाते हैं तब वे नष्ट हो जाते हैं । फिर भी बादल आकाश से भिन्न वस्तु नहीं है । आकाश ही उस रूप से उत्पन्न हुआ और नष्ट भी हो गया, इतने पर भी आकाश तो कायम है । विश्व की वस्तु मात्र में उत्पाद-व्यय ध्रौव्य की सत्ता व्याप्त है ।

सप्तभंगी

वस्तुद्रव्य अनंत पर्याय, अनंत धर्मात्मक है । अत: वस्तु अनंतपर्यायात्मक अनंत-धर्मात्मक होती है । उसमें वे धर्म उसकी अपेक्षा से होते हैं । दूसरी अपेक्षा से नहीं होते । अपेक्षा की दृष्टि से सात प्रकार के प्रश्न खडे होते हैं । उनका समाधान सात प्रकार से किया गया है । इनको सप्तभंगी कहते हैं ।

प्रथम वस्तु को अपने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव अर्थात् दल, स्थान, समय और गुणधर्म इन्हें विधेय रूप से देखेंगे और इससे विपरीत निषेध स्वरूप में देखेंगे ।

दोनों ही वस्तु से संबंधित हैं । उदा. घट एक वस्तु है उसके साथ स्वद्रव्य (उपादान) स्वक्षेत्र, स्वकाल, स्वभाव का संबंध है । पर द्रव्य से विधेयरूप, आस्तिक रूप से एकदूसरे से संबंधित है । घड़े का स्वद्रव्य मिट्टी है साथ-साथ घट के साथ परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभाव का भी संबंध है । फिर भी घट से पूर्णतः अलग है ।

किसी एक घट का स्वद्रव्य मिट्टी है, स्वक्षेत्र, रसोईघर है । स्वकाल कार्तिक मास है, स्वभाव लाल, बड़ा किमती वगैरह है ।

इससे विपरीत घडे का परद्रव्य सूतर है, परक्षेत्र टेरेस है, परकाल मार्गशीर्ष माह है, परभाव काला, छोटा इ. है । क्योंकि घडा मिट्टी से बना है, रसोईघर में है, कार्तिक मास में मौजूद है । लाल है, बडा है वगैरह । यह सब स्वद्रव्यादि विधेय है ।

जबकि घडा धागे का नहीं, टेरेस पर नहीं, मार्गशीर्ष मास में नहीं, काला, छोटा इ. कुछ भी नहीं । स्वद्रव्यादि और परद्रव्यादि से घडे के ही विधेय और निषेध्य संबंध से धर्म बने हैं । इन दो प्रकार के संबंध की उपेक्षा से सात प्रश्न उपस्थित हुए ।

1. घडा स्वद्रव्यादि की अपेक्षा से कैसा ? तो कहा जाएगा कि 'अस्ति' अर्थात् 'सत्' ।

2. घडा परद्रव्यादि की अपेक्षा से कैसा ? तो कहा जाएगा कि 'असत्' ।

3. घडा क्रमशः स्वद्रव्यादि और परद्रव्यादि की अपेक्षा से कैसा ? तो कहा जाएगा "अस्ति और नास्ति", 'सदअसत्' ।

4. घडा एकसाथ दोनों अपेक्षा से कैसा ? 'अवक्तव्य' अर्थात् पहचाना नहीं जा सके वैसा । क्योंकि अगर सत् कहें तो तो दोनों अपेक्षा से 'सत्' नहीं, वैसे ही 'असत्' भी दोनों अपेक्षा से नहीं । तो सत्-असत् भी नहीं कहा जा सकता क्योंकि दोनों संयुक्त अपेक्षा से न तो सत्= है, और न तो असत् है । केवल स्वद्रव्य की अपेक्षा से भी सदसत् नहीं, केवल परद्रव्यादि की अपेक्षा से सदसत् नहीं । दोनों अपेक्षा से क्या कहें ? यह विचारणीय प्रश्न है । अकथ्य है, अवाच्य है, अवक्तव्य है ।

5. घडा क्रमशः स्वद्रव्यादि और उभय अपेक्षा से कैसा ? तो कहा जाएगा अस्ति (सत्) और अवक्तव्य ।

6. घडा क्रमशः परद्रव्यादि और उभय अपेक्षा से कैसा ? तो कहा जाएगा नास्ति(असत्) और अवक्तव्य ।

7. घडा क्रमशः स्वद्रव्यादि, परद्रव्यादि और उभय अपेक्षा से कैसा ? तो अस्ति-नास्ति (सत्-असत्) और अवक्तव्य ।

सारांश, घडे में अस्तित्व, नास्तित्व (सत्व, असत्व) दोनों धर्म विद्यमान हैं । पर भिन्न-भिन्न अपेक्षा से । जिस काल में सत् है उसी समय में असत् भी है, भले ही प्रसंगवशात् केवल 'सत्' कहें फिर भी अंदर में यह समझ ज़रूर है कि यह असत् भी है । इसका मतलब यह कि 'सत्' कहते हैं वह अमुक अपेक्षा से ।

अपेक्षा का भाव सूचित करने के लिए 'स्यात्' पद का उपयोग किया जाता है । तब ऐसा कहेंगे कि-'घडा स्यात् सत् है ।" परंतु सत् तो निश्चित है ही, निश्चितता सूचित करने के लिए 'एव' पद का उपयोग किया जाता है । 'एव=ही' अतः अंत में ऐसा प्रतिपादन किया है-घटः स्यात् सत् एव=घडा कथंचित् (याने अपेक्षा से) सत् है ही-घट=स्यात असत् एवं=घडा कथंचित् (याने अपेक्षा से) असत् है ही । इसी प्रकार प्रतिपादन किया जाता है इसे सप्तभंगी कहते हैं ।

ऐसी सप्तभंगी का सत्-असत् के अनुसार "नित्य-अनित्य" "बडा-छोटा', 'उपयोगी-निरुपयोगी' किमती-मामूली इ. के साथ भी उपयोग किया जा सकता है । पर अलग-अलग अपेक्षा की दृष्टि से ।

उदा. घडा द्रव्य की अपेक्षा से नित्य और पर्याय की अपेक्षा से अनित्य है पानी भरने की अपेक्षा से उपयोगी और घी या दूध भरने की अपेक्षा से निरुपयोगी है ।

मान लो 'अपेक्षा' का उल्लेख न भी किया जाय तो भी अध्याहृत तो है ही । तभी सापेक्ष कथन सत्य होता है निरपेक्ष नहीं । कहा है-**"वचन निरपेक्ष व्यवहार झूठो कह्यो, वचन सापेक्ष व्यवहार साचो"** जिनवचन के अनुसार व्यवहार या क्रिया न हो तो वह असत्य, जिनवचन का आराधक, पर्व करनेवाला व्यवहार, क्रिया सत्य । क्योंकि -

जिनवचन, अनेकांतवादी है । अतः अनेकांतवाद-सापेक्षवाद के अनुसार जो कथन किया जाता है वही सत्य ।

अनुयोग

अनुयोग यानी व्याख्या, निरूपण । जैन शास्त्रों में अनेक विषयों पर व्याख्या उपलब्ध है । उनको चार विभागों में विभाजित किया जा सकता है । मुख्य चार प्रकार के अनुयोग हैं ।

1. **द्रव्यानुयोग**-यानी जिसमें जीव, पुद्गल इत्यादि द्रव्य का निरूपण है । उदा. कर्मशास्त्र, सन्मतितर्क इ. दर्शनशास्त्र, स्थानांगसूत्र, लोकप्रकाश, प्रज्ञापनासूत्र, तत्त्वार्थ महाशास्त्र, विशेषावश्यक भाष्य इ. ।

2. **गणितानुयोग**-यानी जिनमें गिनती, भांगा, माप इ. का वर्णन है । उदा. सूर्यप्रज्ञप्ति, क्षेत्रसमासादि ।

3. **चरण-करणानुयोग**- अर्थात् जिसमें चारित्र और उनके आचार-विचार का वर्णन है । उदा. आचारांग-निशिथ, धर्मबिंदु-धर्मसंग्रह-श्राद्धविधि आचारप्रदीप इत्यादि ।

4. **धर्मकथानुयोग**-यानी जिसमें धर्मप्रेरक कथा, दृष्टांत का वर्णन है । उदा. ज्ञाताध्ययन-आगम, समरादित्य चरित्र, त्रिषष्ठीशलाकापुरुष चरित्र इ. ।

D. जैन साहित्य-एक दृष्टि

जैन साहित्य में असंख्य किताबें हैं । भगवान महावीर स्वामी के समय से आजतक अनेक महान जैनाचार्यो ने, सर्जकों ने असंख्य साहित्य की रचनाएँ की हैं । आचार्यश्री उमास्वाती ने 500 ग्रंथ लिखे हैं ऐसा माना जाता है । श्री हरिभद्रसूरिजी की अपनी स्वयं की 1444 ग्रंथों की रचना उपलब्ध हैं । कलिकालसर्वज्ञ हेमचंद्राचार्य की विपुल साहित्य रचनाएँ प्राप्तव्य हैं । उपाध्याय श्रीमद् यशोविजयजी महाराज साहेब ने 108 महान ग्रंथ लिखे हैं । ऐसे अनेक ज्ञानी महात्माओं ने असंख्य पुस्तकें लिखी हैं । हिन्दुओं का पवित्र ग्रंथ 'गीता' है, मुसलमानों का 'कुरान', खिस्तीओं का 'बाइबल' उसी प्रकार जैन धर्म में 'आगम-ग्रंथ' जैनधर्म के परम पवित्र और प्रमाणभूत साहित्य है । इन्हें सूत्र, शास्त्र, सिद्धांत या निर्ग्रंथ-प्रवचन भी कहा जाता है । आगम 'ग्रंथों की संख्या प्रथम 84 थी अब घटते घटते 45 रह गई हैं । इन 45 आगमों में प्रथम आगम-अंग-आचारांग सूत्र है । जिसमें साधुओं के शुद्ध आचार और विचारों का सूक्ष्म और सूत्ररूप में वर्णन है । इस एक ही ग्रंथ को

जैन साहित्य का प्रतिनिधित्व करनेवाला , जैनसाहित्य का सारभूत ग्रंथ" कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी । वैसे आचारांग सूत्र जैन साहित्य का प्रमुख ग्रंथ है । सूत्रात्मक होने से उन सूत्रों के असंख्य अर्थ किए जा सकतें हैं ।

भगवान महावीर के 'उपन्नेइवा, धुवेइवा-विगमेइवा" ये तीन शब्द ऐसे हैं जिनमें संसार के समग्र ज्ञान का सार आ जाता है । स्त्री, बालक, आदि सभी आसानी से समझ सकें ऐसी बोलचाल की (उस समय की) अर्धमागधी भाषा में उपदेश देते थे । उनके प्रमुख शिष्य-गणधर भगवान महावीर के उपदेश को सूत्ररूप देने और अन्य सभी शिष्य उसे कंठस्थ कर लेते थे । भगवान के शिष्य दीर्घायु, महाज्ञानी सुधर्मा स्वामी ने उपदेश को सूत्ररूप में बांधा है । उसके 12 भाग हैं । प्रत्येक भाग को अंग कहा जाता है ।

45 आगम

1. 11 अंग	2. 12 उपांग
3. 10 पयन्ना	4. 6 छेदसूत्र
5. 2 सूत्र	6. 4 मूलसूत्र

11 अंग

1. आचारांग	2. सूत्रकृतांग
3. समवायांग	4. ठाणांग
5. विवाहप्रज्ञप्ति	6. ज्ञातधर्मकथा
7. उपासक दशा	8. अंतकृत दशा
9. अनुत्तरौपपातिक दशा	10. प्रश्नव्याकरण
11. विपाकसूत्र	12. दृष्टिवाद

(बारहवे अंग का विच्छेद हो जाने से अभी 11 अंग ही उपलब्ध हैं ।)

12 उपांग

1. औपपातिक	5. जंबुद्वीप प्रज्ञप्ति	9. कल्पवतंसिका
2. राजप्रश्नीय	6. चंद्रप्रज्ञप्ति	10. पुष्पिको
3. जीवाजीवाभिगम	7. सूर्यप्रज्ञप्ति	11. पुष्पचूलिका
4. प्रज्ञापना	8. निरयावलिया	12. वृष्णिदशा

10 पयन्ना

1. चतु:शरण	2. संस्तार
3. आतुरप्रत्याख्यान	4. भक्तपरिज्ञा
5. तंदुल वैयालिय	6. चंदाविजय
7. देवेन्द्रस्तव	8. गणिविद्या
9. महाप्रत्याख्यान	10. वीरस्तव

6 छेदसूत्र

1. निशिथ	2. महानिशिथ
3. व्यवहार	4. दशाश्रुत स्कंध
5. बृहत्कल्प	6. जीतकल्प

2 सूत्र

1. नंदीसूत्र	2. अनुयोगद्वार

4 मूलसूत्र

1. आवश्यक-ओधनियुक्ति	2. दशवैकालिक
3. ओघ-निर्युक्ति	4. उत्तराध्ययन

आगमों में कौन-कौन से विषयों की चर्चा है ?

आचारांग प्रथम अंग है ।उसमें ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य इ. आचार तथा गोचरी, विनय, शिक्षा, भाषा, अभाषा, सद्वर्तन क्रिया इ. का वर्णन है ।

दूसरा अंग सूत्रकृतांग है । इसमें लोक, अलोक, लोकालोक, जीव, समय तथा 80 क्रियावादी, 84 अक्रियावादी, 67 अज्ञानवादी तथा 32 विनयवादी इस प्रकार 363 मतों का खंडन कर अनेकांतिक मत का प्रतिपादन किया है ।स्थानांग सूत्र में जीव समय, लोक तथा भूगोल का वर्णन है । समवायांग में एक से आरंभ करके 101 संख्यावाले पदार्थों का निर्णय और द्वादशांगी के स्वरूप का वर्णन किया गया है । व्याख्या-प्रज्ञप्ति सूत्र को भगवती-सूत्र भी कहते हैं । इसमें जीवादि का मूलत: विवेचन किया गया है ।ज्ञाताधर्म कथा में प्रत्येक-कथानायक का जन्म से मोक्ष जाने तक का वर्णन किया गया है ।उपासक दशा में श्रमणोपासक जीव का वर्णन है ।

अंत कृद्दशा सूत्र में मोक्षगामी आत्माओं का वर्णन है ।

प्रश्न व्याकरण में पुछे गए विद्यामंत्र, न पूछे गए विद्यामंत्र, मिश्र-पूछे गए और न पूछे गए-विद्यामंत्र, अंगुठादि के प्रश्न, विद्यातिशय, देवदेवियों के संवाद है । विपाक सूत्र में सुख-दुःख के कारणों की चर्चा है । बारहवा अंग द्दष्टिवाद है । पर अभी वह उपलब्ध नहीं है । विच्छेद हो गया है ।

सुधर्मास्वामीजी ने अकेले ने सभी आगम लिखे नहीं । चौथा उपांग प्रज्ञापना श्री श्यामाचार्यने लिखा है । चतुःशरणसूत्र श्री वीरभद्रगणी ने रचा है । और जो पयन्ना दो के सिवा अन्य सभी भद्रबाहु स्वामीजी की रचना है । महानिशिथ मूल गणधर भ. श्री सुधर्मास्वामी द्वारा रचित हैं । परंतु उसका उद्धार भी हरिभद्रसूरिजी ने किया है । नंदीसूत्र की श्री देववाचकगणी ने रचना की है । दशवैकालिक सूत्र श्री शयंभवसूरिने लिखा है । पिंडिनिर्युक्ति की रचना श्री भद्रबाहुस्वामीजीने की है ।

आगे चलकर साधुओं की स्मरणशक्ति धीरे-धीरे कम होने लगी इससे सूत्रों का विस्मरण होने लगा । तब पाटलीपुत्र में श्री भद्रबाहुस्वामीजी के समय में श्री श्रमणसंघ इकट्ठा हुआ और जिन्हें जो अंग याद था वह सब लिख डाले । उसके पाँचसौ वर्ष बाद आर्यस्कंदिलाचार्य ने सूत्र की अनुयोग(व्याख्या) की । उस समय जिन सूत्रों पर व्याख्यान दिए गए उन्हें माथुरी वाचना कहते हैं । उसके बाद वीर संवत 980 में देवर्धिगणी क्षमाश्रमण वल्लभीपुर(वळा) में एक परिषद हुई उसमें जैन आगम के सिद्धान्त, पुस्तक रूप में प्रचलित हुए । मतबल सर्वप्रथम पुस्तक रूप में लिखे गए । इसे वल्लभीवाचना कहते हैं । उसकी अनेक प्रतियाँ बनाई गई और गाँव-गाँव में प्रचार-प्रसार हुआ । आज ये 45 आगम उपलब्ध हैं । वे आगम सूरत की श्री आगमोदय समिति तथा अन्य संस्था द्वारा छापे गए हैं । अब तो उनमें से बहुत से आगमों का गुजराती तथा अन्य भाषा में अनुवाद भी हुआ है । इन आगमों में अनेक विषयों का ज्ञान समाविष्ट है । उनके अनुवाद गुजराती, हिन्दी, मराठी, कन्नड, तामिल, अंग्रेजी, जर्मन इत्यादि भाषाओं में हुए हैं ।

आगमों के अलावा जैन तत्त्वज्ञान में खास ग्रंथों में तत्त्वार्थाधिगम् सबसे सुंदर ग्रंथ हैं । इस पर अनेक टीकाएँ लिखी गई हैं । इसके अलावा श्री हरिभद्रसूरि का षड्दर्शनसमुच्चय, श्री जिनभद्रक्षमाश्रमण का विशेषावश्यक भाष्य, श्री अनंतवीर्य

का परीक्षासूत्र लघुवृत्ति, प्रमाणनयतत्त्वलोकालंकार, श्री मल्लिसन श्री जैन तत्त्वज्ञान के सुंदर ग्रंथ हैं । तत्त्वज्ञान और न्याय का गहरा संबंध होने से दोनों विषयों के ग्रंथों का विभाजन करना मुश्किल हो जाता है ।

जैन न्याय के महान लेखक और उनकी कृतियाँ

1) श्री सिद्धसेन दिवाकर	1) सन्मतितर्क 2) न्यायावतार
2) श्री मल्लवादीसूरि	1) द्वादशारनय चक्र 2) सन्मतिनी टीका (अनेकांतजयपताका)
3) श्री हरिभद्रसूरि	1) ललितविस्तरा 2) धर्मसंग्रहणी
4) श्री अभयदेवसूरि	1) सन्मतितर्क पर महा टीका
5) श्री वादीदेवसूरि	1) स्याद्वादरत्नाकर
6) श्री हेमचंद्राचार्य	1) प्रमाणमीमांसा 2) अन्ययोगव्यच्छेद द्वात्रिंशिका
7) श्री यशोविजयजी	1) जैन तर्क परिभाषा 2) द्वात्रिंशद्द्वात्रिशिका 3) धर्मपरीक्षा 4) नयप्रदीप 5) नयामृततरंगिणी 6) खंडनखंड खाद्य 7) न्यायालोक 8) नयरहस्य 9) नयोपदेश 10) अनेकांतव्यवस्था 11) तत्त्वार्थसूत्रवृत्ति
8) श्री गुणरत्नसूरि	षड्दर्शनसूमच्चयवृत्ति
9) श्री चंद्रसेन	उन्मादसिद्धि प्रकरण
10) श्री चंद्रप्रभसूरि	प्रमाणसुंदर
11) श्री पद्मसुंदरगणि	प्रमाणसुंदर

12) श्री बुद्धिसागर प्रमाणलक्ष्मलक्षणा
13) श्री मुनिचंद्र अनेकांतवादजयपताका
14) श्री राजशेखर स्याद्वावकलिका
15) रत्नप्रभसूरि रत्नाकरावतारिका
16) श्री शुभविजयजी स्याद्वादभाषा
17) श्री शांतिसूरि प्रमाणप्रमेयकलिकावृत्ति

दिगंबरों में भी न्याय पर कई पंडितों ने साहित्य लिखा है ।

योग और अध्यात्म के ग्रंथ

योगबिन्दु, योगदृष्टिसमुच्चय, योगविंशिका, योगशास्त्र, योगशतक, योगसार, समाधिशतक, परमात्मप्रकाश, समभावशतक, ध्यानशतक, ध्यानसार, ध्यानदीपिका, ध्यानविचार, अध्यात्मउपनिषद, अध्यातमबिन्दु, अध्यात्मरंगिणी, अध्यात्मगीता, अध्यात्मकल्पद्रुम, ज्ञानार्णव इ.

कर्मसाहित्य

मुख्यग्रंथ-कर्मप्रकृति, पंचसंग्रह, प्राचीन पाँच कर्मग्रंथ, नवीन छः कर्मग्रंथ, संस्कृत 4 कर्मग्रंथ, कर्मस्तव विवरण इ. है । इन पर बहुत सी टीकाएँ लिखी गई हैं ।

साहित्यग्रंथ

साहित्यग्रंथों में जैनों का बहुत बडा सहभाग है । व्याकरण, कोश, छंदशास्त्र, अलंकारशास्त्र, काव्य, नाटक, कथा प्रबंध इ. साहित्य की सभी विद्याओं पर आचार्यों ने साहित्य लिखा है । पाणिनि के संस्कृत भाषा के व्याकरण से स्पर्धा करनेवाले 'सिद्धहेम' नाम का व्याकरण श्री हेमचंद्राचार्य ने लिखा है और अंतिम अध्याय में प्राकृत, अपभ्रंश इ. भाषा के व्याकरण भी लिखे हैं । शाकटाराय का व्याकरण तो बहुत प्रसिद्ध है । पूज्यपाद देवनंदि का जैनेन्द्र व्याकरण भी बहुत मशहूर है । इनके अलावा बुद्धिसागराचार्य ने बुद्धिसागर व्याकरण, ज्ञानविमलगणि ने शब्दप्रति भेद व्याकरण और श्री विद्यानंदसूरि ने सिद्धसारस्वत व्याकरण की

रचना की है । प्राकृत भाषा के अन्य भी अनेक व्याकरण जैनचार्यों ने लिखे हैं । तामिल और कानडी भाषा के मूल व्याकरण जैनाचार्यों ने ही लिखे हैं और गुजराती भाषा पर तो सैंकडो वर्षों से एक मात्र जैनों ने ही अपना आधिपत्य बनाए रखा है । काव्य रचना की तो कोई गिनती ही नहीं । अनेक काव्य और द्विसंधान काव्य, त्रिसंधान काव्य, इतनाही नहीं सप्त संधान काव्य याने जिन श्लोक में से सात संबंध के अर्थ बने तथा सातों के अलग-अलग जीवन समझ में आवे ऐसे भी विशिष्ट प्रकार के काव्य की रचना हुई है । एक अष्टलक्षी नामक ग्रंथ है । उसमें एक श्लोक के आठ लाख अर्थ बताए हैं । श्री हेमचंद्राचार्य ने छंदशास्त्र तथा अलंकार पर स्वतंत्र ग्रंथों की रचना की है । श्रीवाग्भट्ट ने भी 'काव्यालंकार' नाम से अलंकार शास्त्र की रचना की है । श्रीअमरचंद्रसूरिजी ने कविशिक्षावृत्ति, कविकल्पलता, छंदरत्नावली कला-कलाप इ. ग्रंथों की रचना की है । श्री नमिसाधुजी ने प्रख्यात काव्यालंकार पर टिप्पणी लिखी है । श्री नरेन्द्रप्रभसूरिजी ने अलंकार महोदधि बनाए हैं । श्री माणिक्यचंद्रसूरिजी ने काव्यप्रकाशसंकेत लिखे हैं । और कोश रचना में तो श्री हेमचंद्राचार्य ने कमाल कर दिया है । अभिधान चिंतामणी, अनेकार्य कोश, देशीनाममाला, निघूंट इन सबकी रचनाएँ उन्होंने स्वयं की है । इसके अलावा सटीक धातुपाठ, सटीक धातुपारायण, धातुमाला, लिंगानुशासन इ. संस्कृत भाषाशास्त्र में महत्त्वपूर्ण ग्रंथों की रचना की है । धनंजय कवि ने 'धनंजय नाममाला' रचना की है । श्री हर्षकीर्तिजी ने 'शारदीयनाममाला' की रचना की है । अन्य महर्षियों ने भी बहुत कुछ लिखा है ।

महाकाव्य

बहुत से तीर्थंकरों के चरित्र शिष्ट काव्यों में लिखे हैं । श्री शांतिनाथ चरित्र, श्री पार्श्वनाथ चरित्र, श्री वासुपूज्य चरित्र ऐसे बहुत काव्य हैं । इसके अलावा श्री अभयदेवसूरिने जयंत चरित्र महाकाव्य लिखा है । श्री अमरचंद्रजी ने पदमानंभ्युदय महाकाव्य तथा बालभारत महाकाव्य की रचना की है । उदयप्रभसूरिजीने धर्माभ्युदय महाकाव्य की रचना की है । कवि श्री जयशेखरसूरिजी ने जैन कुमारसंभव काव्य लिखा । श्री देवप्रभसूरि मलधाराजी ने पांडवचारित्र महाकाव्य की रचना की है ।

श्री धनंयज महाकविजी ने राघव पांडवीय महाकाव्य (द्विसंधान महाकाव्य) लिखा है । श्री नयनचंद्रसूरिजी ने हम्मीर महाकाव्य तथा पद्मचंद्रजी ने धन्नाभ्युदय महाकाव्य लिखा है । तथा पद्मसुंदरगणिजी ने रायमल्लाभ्युदय महाकाव्य तथा पार्श्वनाथ काव्य रचना की है । माणिकचंद्रसूरिजी ने पार्श्वनाथ चरित्र तथा नलायन काव्य की रचना की है । श्री हेमचंद्रसूरिजीने भी त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र तथा द्व्याश्रय नामक महाकाव्य लिखे हैं । इनके सिवा और भी कई काव्य हैं । खंडकाव्य, स्तोत्र, स्तुतियों का तो कोई पार नहीं ।

नाटक

रघुविलास, नलविलास, राघवाभ्युदय, सत्यहरिश्चंद्र, कौमुदीचित्रानंद, निर्भयभीमव्यायोग(कर्ता, श्री हेमचंद्राचार्य के प्रख्यात शिष्य श्री रामचंद्र) हमीर मदमर्दन (कर्ता-जयसिंह) रंभामंजरी (लेखक : नयचंद्रसूरि), मोहपराजय(ले. यशपाल) कुमुदचंद्र, प्रबुद्ध रोहिणेय, द्रौपदी स्वयंवर, धर्माभ्युदय इ.

कहानियाँ (कथाएँ)

संस्कृत, प्राकृत और गुजराती भाषा में कथाएँ विपुल मात्रा में हैं । उसमें श्री हेमचंद्रचार्य का त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र तथा परिशिष्ट पर्व, श्री पादलिप्तचार्य का तरंगलोला दाक्षिण्यचिह्न उद्योतनसूरिजी की कुवलयमाला, श्री भद्रेश्वरसूरिजी की कथावली, वसुदेव हिंडी, श्री हरिभद्रसूरिजी की समराइच्चयकहा, श्री सिद्धर्षिगणीजी की उपमितिभवप्रपंचा कथा, श्री धनपाल कवि श्री तिलकमंजरी, इ. मुख्य हैं । अपने आचार्यों द्वारा पंचतंत्र के अनेक संस्करण उपलब्ध हैं । कथाकल्लोल, सिंहासनबत्रीसी, वैतालपचीसी इ. भी बहुत संस्करण हैं । इनके अलावा रास और जीवनचरित्र तो बहुत लिखे गए हैं । केवल गुजराती भाषा में सातसौ से अधिक रास हैं । प्रबंध की रचना में भी जैन अग्रसर हैं । श्री मेरुतरंगा-चार्य ने प्रबंध चिंतामणी की रचना की है । श्री राज्यशेखरसूरिजी ने चतुर्विंशति प्रबंध की रचना की है । श्री प्रभाचंद्रसूरिजी ने प्रभावकचरित लिखा है । श्री भद्रेश्वराचार्य ने पुरातन प्रबंध संग्रह महाकवि रामचंद्रजी ने प्रबंध लिखे हैं । इस प्रकार जैनों की कथा और प्रबंध ग्रंथ भी विपुल मात्रा में हैं ।

कला एवं विज्ञान संबंधी ग्रंथ

शिल्पशास्त्र, संगी, धनुर्विद्या, अश्वपरीक्षा, गजपरीक्षा, पक्षीविज्ञान, रत्नपरीक्षा, रसायण, आयुर्वेद, खगोल, ज्योतिष इ. संबंधित ग्रंथों की संख्या बहुत है । इस संबंध में जैन विद्वान ठक्कर फेरु ने वास्तुसार ग्रंथ लिखा है । भोजदेव ने वास्तुशात्र नाम का ग्रंथ लिखा है । और भी प्रासादमंडन इ. बहुत ग्रंथ हैं । श्री पार्श्वदेव नाम के जैनाचार्य ने संगीतमयसार तथा अन्य एक आचार्य ने संगीत-रत्नाकर लिखकर इस विषय में खूब प्रसिद्धि प्राप्त की है । इसके अलावा संगीत-दीपक, संगीत रत्नावली, इ. ग्रंथों की भी रचना की गई है । रत्नपरीक्षा नाम का एक ग्रंथ लिखा गया है, जिसका फ्रांस के एक झवेरी ने फ्रेंच भाषा में अनुवाद किया है । कुछ लिखा गया है । मंत्र के बारे में महत्त्वपूर्ण ग्रंथ का नाम विद्यानुशासन है वह भी जैनाचार्य की ही रचना है । मंत्र विषय के अलग-अलग बहुत कल्प लिखे गए हैं । भैरवपद्मावती कल्प, शंखावर्त कल्प इ. अनेक हैं । सूरिमंत्र कल्प यह एक विशिष्ट प्रकार का कल्प है । वह भी साधुओं के गच्छानुसार भिन्न-भिन्न प्रकार से लिखे गए हैं । ज्योतिष में भद्रबाहु नाम से भद्रबाहु संहिता है । हर्षकीर्तिजी ने ज्योतिषसारोद्धार नाम के ग्रंथ की रचना की है । जिसमें तारकों के संबंध में बहुत गहरा ज्ञान समाविष्ट है । उसमें स्वप्न, मंत्र और बीजगुप्त विद्याओं का वर्णन है । उसी प्रकार आरंभसिद्धि, अर्धकांड, चंद्ररज्जू, चक्रविवरण, जातकदीपिका, ज्योतिषसार संग्रह, भुवनदीपक इ. अनेक ग्रंथ हैं । ठक्कर फेरु ने सिक्कों के बारे में महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिखा है । मंत्रतंत्र के बारे में भी बहुत कुछ लिखा गया है । मंत्र के बारे में महत्त्वपूर्ण ग्रंथ का नाम विद्यानुशासन है वह भी जैनाचार्य की ही रचना है । मंत्र विषय के अलग-अलग बहुत कल्प लिखे गए हैं । भैरवपदमावती कल्प, शंखावर्त कल्प इ. अनेक हैं । सूरिमंत्र कल्प यह एक विशिष्ट प्रकार का कल्प है । रट्टाचार्य नाम के जैन साधुने रट्टासूत्र नाम से 1300 कथाओं का ग्रंथ लिखा है । जिसमें बरसात, धरतीकंप, बिजली ऐसे अनेक विषयों के पूर्वलक्षण बताए हैं । वेदक में भी अनेक ग्रंथ हैं । जैसे आयुर्वेद, महोदधि, चिकित्सोत्सव, द्रव्यावलि (निघंटु) प्रतापकल्पग्रंथ, माधवराज पद्धति, योगरत्नाकर, रत्नासागर, रसचिंतामणि, वेदक

सारोद्धार इ. गणित के अनेक ग्रंथों में श्री महावीराचार्य ने इ. स. के नौवे शतक में रचा हुआ गणितसारसंग्रह का तो अंग्रेजी में अनुवाद भी हो चुका है । निमित्तशास्त्र में तो जैनाचार्यो ने अपने अनुभवों का खजाना लोकहित के लिए मुक्त कर रखा है । अंगविद्या नाम का एक प्राचीन ग्रंथ है, उसमें इससे संबंधित बहुत उपयोगी जानकारी मिलती है । दुर्गदेव ने रिष्ट समुच्चय नाम का ग्रंथ लिखा है ।

विनयविजयजी महाराजश्रीने विज्ञानकोश के समान लोकप्रकाश नाम का ग्रंथ लिखा है । उसमें सात सौ ग्रंथों के प्रमाण दिए हैं ।

ग्रंथ के अंतमें उन-उन आचार्यों ने अपनी प्रशस्ति दी है । जिसमें उनके गुरु और उस समय के राजा, मंत्री, गृहस्थ और उन्होंने किए हुए शुभ कार्यों की नोंध भी दी है । ये प्रशस्तियाँ इतिहास की दृष्टि से उपयोगी सिद्ध होती है । इसी प्रकार इन पुस्तकों के अंत में लेखन समय का भी उल्लेख है इससे भी बहुत जानकारी मिलती हैं । ये प्रशस्तियाँ शिलालेख के समान ही प्रामाणिक मानी जाती हैं ।

इस लेख में की गई समस्त चर्चा जैन धर्म के श्वेताम्बर मूर्तिपूजक परंपरा से संलग्न है । दिगंबर परम्परा में भी बहुत महान ग्रंथों की रचना हुई है ।

3. जैनाचार

A. मार्गानुसारी जीवन

सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्त्व से परिपूर्ण साधना यानी मोक्ष का मार्ग । इस मार्ग की ओर जो ले जाता है, इस मार्ग का अनुसरण कराने में जो सहायक बनता है उसे मार्गानुसारी जीवन कहते हैं ।

शास्त्रो में मार्गानुसारी के पैंतीस गुणों का वर्णन आता है । इन गुणों को याद करना सरल हो जाय इसलिए उन्हें चार विभागों में विभाजित किया है ।

जीवन में आदरने योग्य 11. कर्त्तव्य ।2. जीवन में त्याग करने योग्य 8 दोष ।3. जीवन में उतारने योग्य 8 गुण । 4. जीवन में साधने योग्य 8 साधना ।

मार्गानुसारी के 35 गुणों का विभाजन

11 कर्त्तव्य	**8 दोषत्याग**	**8 गुण-ग्रहण**	**8 साधना**
1 न्यायसंपन्नता	1 निंदात्याग	1 पाप-भय	1 कृतज्ञता
2 उचित व्यय	2 निंद्य प्रवृत्ति त्याग	2 लज्जा	2 परोपकार
3 उचित वेश	3 इन्द्रिय-गुलामी त्याग	3 सौम्यता	3 दया
4 उचित विवाह	4 आंतरिक-शत्रुजय	4 लोकप्रियता	4 सत्संग
5 उचित घर	5 अभिनिवेश त्याग	5 दीर्घ द्रष्टि	5 धर्मश्रवण
6 अजीर्ण भोजनत्याग	6 त्रिवर्गआबाधा	6 बलाबल विचारणा	6 बुद्धि के 8 गुण
7 कालानुसार भोजन पालन	7 उपद्रववाले स्थान का त्याग	7 विशेषज्ञता	7 प्रसिद्धदेशाचार पालन
8 मातापिता आदरपूजा	8 अदेशकालचर्या त्याग	8 गुणपक्षपात	8 शिष्टाचार प्रशंसा
9 पोष्य-पोषण			
10 अतिथि-साधु दीनजनों की सेवा			
11 ज्ञानवृद्ध और चारित्र्य संपन्न की सेवा			

11 कर्तव्य

1. गृहस्थ जीवन में है अतः कमाई किए बिना तो चलेगा नहीं, पर उस कमाई का उपार्जन न्याययुक्त हो, अन्य बातों में भी **न्यायसंपन्न जीवन** जीना चाहिए यह पहला कर्तव्य ।

2. आवक के अनुसार ही खर्च होना चाहिए । अपने धर्म का पालन करते हुए जीवन जीना चाहिए । **उचित खर्च** यह दूसरा कर्तव्य ।

3. पैसा हे इसलिए उच्छृंखलता दिखाई दे ऐसा वेश नहीं पहनना चाहिए । शोभा दे ऐसे ही वस्त्र पहनने चाहिए । उचित वेश नामक तीसरा कर्तव्य ।

4. रहने का मकान ऐसा नहीं होना चाहिए कि जिससे चोर बदमाश सहजता से घर में प्रवेश कर सके । वैसे ही घर को बहुत दरवाजे न हों, पडौसी सज्जन हों ऐसा घर हो । यह चौथा कर्तव्य **उचित घर** ।

5. पुत्र-पुत्रियों का विवाह गोत्र भिन्न और समान कुल तथा आचार-विचारवालों के साथ ही करें, यह **उचित विवाह** ।

6. भोजन पहले खाया हुआ पच न जाय तब तक दुबारा भोजन न करें । यह **अजीर्ण भोजन** त्याग-छठा कर्तव्य ।

7. नियत समय पर भोजन करे । भले भूख लग जाय तो भी अपनी शरीर प्रकृति को योग्य ही भोजन करें । "काले साम्यतः भोजन" नामक सातवाँ कर्तव्य । भोजन करने में नियमितता इसलिए कि पेट में पाचक रस नियमित तैयार होता है । देर-सबेर इसमें बदल होता रहता है । वायु की शरीरप्रकृति हो तो सेम-मटर(द्विदल) इ. का सेवन बदहज्मी का कारण बनकर स्वास्थ्य बिगड सकता है ।

8. माता-पिता को भोजन खिलाकर फिर स्वयं भोजन करें । भोजन, वस्त्र, शय्या वगेरे शक्तिनुसार अपने से अधिक अच्छा देकर मातापिता की भक्ति करनी चाहिए । यह आठवाँ कर्तव्य-**मातापिता की पूजा** ।

9. परिवार के मुखिया को परिवार के पालन पोषण में कोई कमी नहीं रखनी चाहिए ।

10. अतिथि याने जिनके आने की कोई तिथि नहीं । पर वे हैं तो मौजूद ही ऐसे 'मुनि', 'साधु' अर्थात् सज्जन और दीन-हीन दुःखी व्यक्ति घर-आँगन आ

जाय तो उनका यथायोग्य सत्कार सम्मान करें । अतिथि, साधु इ. की यथायोग्य सेवा का लाभ लेवें ।

11. ज्ञाति में ज्ञानवृद्ध और चारित्र पात्र हों तो उनकी सेवा करना यह ग्यारहवाँ कर्तव्य ।

आठ दोषों का त्याग

1. निंदात्याग-दूसरों की निंदा करना नहीं और सुनना भी नहीं । निंदा महादोष है । निंदा से नीचगोत्र का बंध पड़ता है । एक दूसरे के मन कलुषित होते हैं । आपस का स्नेह टूट जाता है । ऐसे मानवता की दृष्टि से भयानक हानी होती है ।

2. निंद्यप्रवृत्ति का त्याग-जिस प्रकार से जबान से किसी की निंदा नहीं करना उसी प्रकार काया या इन्द्रियों से किसी का विश्वासघात, जुगार इ. निंद्यप्रवृत्ति नहीं करना । यह भी निंदा का ही प्रकार है । पापप्रवृत्ति है ।

3. इन्द्रियगुलामी त्याग-इन्द्रियों को अयोग्य स्थान पर जाना अटकाना, अंकुश रखना, संयमित करना इन्द्रियों के गुलाम नहीं बनना इन्द्रियों को अपना गुलाम बनाना ।

4. अंतरशत्रुजय-हृदय में तीव्र काम-क्रोध-लोभ-मान(हठाग्रहादि) मद, हर्ष ये छ आंतरिक शत्रु हैं । इन पर विजय प्राप्त करना चाहिए वरना उनकी गुलामी में धन, पूर्वजन्म का पुण्य और धर्म सब नष्ट हो जाता है।

5. अभिनिवेशत्याग-मन में अभिनिवेश-दुराग्रह नहीं रखना चाहिए वरना अपकीर्ति होती है ।

6. त्रिवर्ग-बाधात्याग-आवेश में आकर धर्म-अर्थ-काम इनमें परस्पर बाधा पहुँचे ऐसा न करें अर्थात् इन तीनों में से किसी एक के इतना आधीन नहीं होना चाहिए, जिससे अन्य बिदा हो जाय और अपयश, धर्मलघुता, धर्महानि वगैरह अनर्थ होजाय ।

7. उपद्रवयुक्त स्थान त्याग-प्लेग, आंदोलन इत्यादि उपद्रवयुक्त स्थान का त्याग करना ।

8. अयोग्य देशकाल त्याग-अयोग्य देशकाल में घूमना नहीं ।

उदा. वेश्या और चोर, लुच्चे-लफंगों की गलियों में जाना नहीं । वैसे ही बहुत रात बीते तक घूमना नहीं । वरना कलंक लगता है या लूँटा जा सकता है ।

आठ गुणों का आदर

1. पाप का भय-हमेशा पाप का भय रखना चाहिए । सदा जागरुक रहना चाहिए कि कहीं मुझसे कोई पाप न हो जाय । इस गुण की वृद्धि करने से पाप का प्रसंग आने पर भी तुरंत मन में विचार आएगा कि "इससे तो मेरा आत्मिक पतन न हो जाय !" ऐसा भय आत्महितकर **है** । आत्मोत्याग की नींव है ।

2. लज्जा-अकार्य करते हुए लज्जा का अनुभव हो तो ऐसे तुच्छ कार्य होंगे ही नहीं । वैसे ही बुजुर्गों की लज्जा, दाक्षिण्य हो तो बुरे रास्ते की ओर दृष्टि भी नहीं जाएगी । शरम रहे तो अच्छे कार्य की ओर प्रेरित हो सकते हैं ।

3. सौम्यता-स्वभाव, वाणी और मुखाकृति सौम्य रहे । उग्रता पास भी नहीं फटके । मधुर स्वभाव से सद्भावना, सहानुभूति मिलती है ।

4. लोकप्रियता-उपर्युक्त गुणों से और सदाचार से लोगों का प्रेम संपादन करना चाहिए ।

5. कोई भी कार्य शुरु करने से पहले **दीर्घ दृष्टि** से दूर की सोचना चाहिए । परिणाम का पहले ही विचार करना चाहिए जिससे पछताने का अवसर ही न आए ।

6. बलाबल विचारणा-कोई कार्य लाभदायक हो सकता है । फिर भी उसके परिणाम क्या होगा और वह पूरा करने की अपनी क्षमता है या नहीं इसका विचार पहले कर लेना चाहिए । वरना उससे काम के बजाय हानि हो सकती है ।

7. विशेषज्ञता (विशेष=विवेक) हमेशा सार-असार, कार्य-अकार्य, वाच्य-अवाच्य इत्यादि संबंधी विवेक रखना चाहिए । वैसे ही विशेष नया-नया आत्महितकर ज्ञान प्राप्त करते रहना चाहिए ।

8. गुणपक्षपात-अपने जीवन में या दूसरों के जीवन में हमेशा गुणदृष्टि रखनी चाहिए । दोष देखने की दृष्टि नहीं रखनी चाहिए । 'गुणग्राहकता' इस गुण को अपनाना चाहिए । यह प्रथम लक्षण गुणग्राहकता ही है ।

आठ-साधना

1. कृतज्ञता-देव, गुरु, माता-पिता इ. किसी के भी उपकार को कभी भूलना नहीं चाहिए । कृतज्ञ रहकर उपकृत होने का मौका ढूँढना चाहिए ।

2. परोपकार-किसी ने हम पर उपकार न भी किया हो, करेंगे भी नहीं फिरभी हमें नि:स्वार्थ भाव से उपकार करते रहना चाहिए ।

3. दया-हृदय हमेशा कोमल, दयालु, करुणा से ओतप्रोत रखना चाहिए । तन-मन-धन से दया करते रहना चाहिए क्योंकि दया ही धर्म का मूल है । निर्दयता से सम्यक्त्व की हानी होती है ।

4. सत्संग-सांसारिक संग यह रोग है । दु:खकारक है । परंतु सत्संग यह रोग हटाने की औषधी है, अत: हमेशा सत्पुरुषों का संग साध्य करना चाहिए ।

5. धर्मश्रवण-सत्संग साधकर, धर्मश्रवण करते रहना चाहिए । इससे ज्ञान का प्रकाश और प्रेरणा मिलती रहती है । जिससे आध्यात्मिक जीवन जीने का सुअवसर प्राप्त होता है ।

6. बुद्धि के आठ गुण-धर्मश्रवण करने के लिए तथा व्यावहारिक जीवन में भी उतावलापन न आवे बुद्धि के स्तर पर सोच शक्ति जागृत रहे इसलिए बुद्धि के आठ गुण बताए हैं ।

शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा ।
ऊहापोहोर्थ विज्ञानं तत्त्वज्ञानश्च धीगुणा: ।।

1. सुनने की इच्छा निर्माण होना यानी शुश्रूषा (2) इधर-उधर ध्यान न दौड़ना, मन एकाग्र कर, मन लगाकर सुनना यानी श्रवण । (3) सुनना भी समझपूर्वक यानी ग्रहण (4) सुने हुए तत्त्वों के अनुकूल तर्क, दृष्टान्त का विचार करना यानी उहा(इहा)(6) प्रस्तुत में बाधक अंश नहीं यह करना यानी अपोह । (7) उहापोह से पदार्थ नक्की करना यानी अर्थविज्ञान। (8) पदार्थ-निर्णय, पर सिद्धान्त निर्णय, सार-रहस्य तात्पर्य निर्णय या तत्त्वनिर्णय करना यानी तत्त्वज्ञान ।

7. प्रसिद्ध देशाचार पालन-बुद्धि के आठ गुणों से युक्त धर्मश्रवण करना यानी लोक को संक्लेश करना, धर्मनिंदा करना ऐसा प्रसिद्ध देशाचार का उल्लंघन न करें ।

8. शिष्टाचार प्रशंसा-शिष्ट पुरुषों के आचार-लोकनिंदा-भय, दीन दु:खियों का उद्धार, कृतज्ञता, किसी की प्रार्थना का भंग न करने का दाक्षिण्य, निंदात्याग, गुणप्रशंसा, आपत्ति के समय धैर्य, सुख, संपत्ति के समय नम्रता, अवसरानुसार हित-मित-प्रियवचन, वचन-बद्धता, विघ्नजय, आयोचित व्यय, सत्कार्यमें प्रवृत्ति,

अकार्य का त्याग, अतिनिद्रा-विषय-कषाय-विकथादि प्रमाद का त्याग, औचित्य..... इत्यादि आचारों की प्रशंसा करते रहना जिससे गुणों के प्रति प्रेमभाव बढे, आचरण में उतरे, और मन में वैसे सुसंस्कार बस जाए ।

मार्गानुसारी के 35 गुणों से जीवन छलकता रहे, यह बहुत आवश्यक रहे क्योंकि आगे जीवन में संसार का त्याग करके साधुत्व तक पहुँचे हुए साधु में इसमें से किसी गुण की हानी हो, कोई एकाद भी गुण भंग हो जाय तो ऊँचे धर्मस्थान तक पहुँचकर भी नीचे गिर सकता है-उदा. नंदिषेण मुनि अयोग्य देशचर्चा तथा आंतरिकशत्रु मद के वशीभूत होकर वेश्या को समझाने के चक्कर में स्वयं ही पदच्युत हो गये ।

मार्गानुसारी गुणों से आत्मारूप खेत की खुदाई करके उसे मुलायम बनाया जा सकता है और अपुनर्बंधक अवस्था प्राप्त होती है ।

अपुनर्बंधक अवस्था

अपुनर्बंधक अवस्था यानी आत्मा की ऐसी गुणमय अवस्था कि उसके बाद अब आत्मा में कभी भी दर्शनमोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति (७० कोटाकोटी सागरोपमकी) नहीं बँधती । यह अवस्था प्राप्त करने के लिए मूल तीन गुणों की बहुत आवश्यकता है ।

1. तीव्र भाव से पाप नहीं करना । अर्थात् अमुक पाप कार्य संसारियों को किए बिना छुटकारा नहीं वैसे कार्य करते समय मन में पापभीरुता, हृदय में दयाभाव होना चाहिए ।

2. यह संसार घोर पापमय है उसका क्या आदर-सम्मान करना ? संसार यानी चार गति में भ्रमण, संसार यानी अर्थकाम तथा विषय-कषाय, संसार यानी कर्मबंधन, यह संसार भयंकर है । ऐसा ही भाव हमेशा मन में रखना चाहिए । संसार का क्या पक्षपात करना ? इसमें आस्था, अच्छाई की क्या अपेक्षा रखना ?

3. धर्म कार्य करने का अवसर मिलते ही तुरंत उस पर अमल करना, अपनी स्थिति से विपरीत बर्ताव नहीं करना । जब ऐसा सरल हृदय हो जाय आत्मभूमि समतल हो जाय तो सम्यग्दर्शनादि की सुंदर फसल उग सकती है ।

4. प्रतिभा–परिचय

श्री हरिभद्रसूरिजी

चित्रकूट के महाराज के पुरोहित का गौरववान पद । दर्शनशास्त्र में अगाध विद्वत्ता होने पर भी बालक समान सरलता श्री हरिभद्रसूरिजी में थी, ऐसा प्रभावशाली व्यक्तित्त्व कि अच्छे–अच्छे विद्वान्–पंडित भी आश्चर्यचकित हो जाते थे ।

छोटे बालक के समान जिज्ञासुभाव उनमें कूट–कूटकर भरा हुआ था । नया ज्ञान सीखना, सुनना, समझना यही श्री हरिभद्रसूरिजी की जिज्ञासु प्रवृत्ति थी ।

हरिभद्र पुरोहित को कुल और वंशपरंपरा से मिथ्या शास्त्र का वारसा मिला था । अत: जैन शास्त्र, जैन दर्शन या जैन पवित्र धर्मस्थान के प्रति स्वाभाविक है कि अरुचि थी । इनसे दूर रहना ही वे उचित समझते थे ।

एक दिन दोपहर को किसी कारणवश राजदरबार में जाने का अवसर आया । रास्ते से चले जा रहे थे इतनें में पीछे से लोगों की चिल्लोने की आवाज आई, भागो, दौडो, मद से पागल बना हाथी आ रहा है । हरिभद्र ने मुड़कर पीछे देखा तो साक्षात् मृत्यु पीछा कर रही है ऐसा लगा । मदोन्मत्त हाथी रास्ते पर चित्कार करता हुआ तेजी से दौडा चला आ रहा था ।

पंडितजी क्षणभर सोच में पड़ गए ! "अब क्या करें ?" रास्ता सँकरा था । दौड़कर आगे जाना खतरे से खाली न था । अत: एक मकान दिखाई देते ही उसमें घुस गए । पंडितजी अंदर गए तो देखा वह कोई सामान्य मकान नहीं था बल्कि सुंदर जिनमंदिर था । श्री वीतराग अरिहंत देव की भव्य मूर्ति सामने विराजमान थी ।

परंतु कुलपरंपरागत अरुचि से हृदय भरा हुआ था । जिनेश्वर देव की स्तुति से उनके हृदय में सद्भाव नहीं जागा । वे बोले –

"वपुरेव तवाचष्टे स्पष्टं मिष्टान्नभोजनम्"

वाह ! तुम्हारा शरीर ही स्पष्ट बता रहा है कि – तुम मिष्टान्न उडाते हो ! श्री तीर्थंकर देव–जैनों के देव की मज़ाक करने में हरिभद्र पंडित को बड़ा मज़ा आ रहा था ।

कुछ देर में हाथी वहाँ से चला गया । डर दूर हो गया । तब पंडित अपने घर पहुँचे ।

उनके दिमाग में यही विचार मँडराने लगे कि दुनिया में अभी बहुत कुछ जानने जैसा है । उन्हें अपने ज्ञान पर बहुत गर्व तो था, फिर भी ऐसा ज्ञान बतानेवाला मिले जो "मैं समझ न सकूँ तो उसके चरणों में लोट जाऊँ ।" इतनी प्रामाणिकता राजपुरोहित में जरूर थी ।

उन्होंने एक दिन प्रतिज्ञा की कि "अगर कोई मुझे ऐसा ज्ञान दे जो मैं उसका अर्थ न समझ सकूँ तो मैं उसका शिष्य बन जाऊँगा ।" इस प्रतिज्ञा से हरिभद्र का घमंड ही प्रगट होता है ऐसा कईयों को लगा । परंतु प्रतिज्ञा लेने में पंडितजी के मन में बिल्कुल घमंड या गर्व नहीं था । वे तो सरल, ऋजु स्वभाव के बालक जैसे थे ।

एक बार देर रात तक राजकार्य से निवृत्त होकर पंडित हरिभद्र घर की ओर लौट रहे थे । अचानक उनके कान में मधुर शब्द पड़े । आवाज स्त्री की थी । शब्द पूरी तरह अपरिचित थे । रास्ते पर जिस मकान से आवाज आ रही थी, उसे हरिभद्र ने ध्यान से सुना -

चक्की दुगं हरिपणगं
पणगं चक्किण केसवो चक्की
केसवो चक्कि केसव दु
चक्कि केसीए चक्कि

हरिभद्र को यह श्लोक एकदम नया लगा । इस श्लोक में आए चक; चक शब्द पंडितजी के समझ में नहीं आए । घर जाने की जल्दी होते हुए भी वे इस श्लोक के अर्थ को जानने की जिज्ञासा नहीं रोक पाए । वे सीधे जहाँ से आवाज आ रही थी उस मकान में पहुँचे । वहाँ जैनसाध्वियाँ स्वाध्याय आदि धार्मिक प्रवृत्ति में मग्न थीं । श्लोक बोलनेवाली साध्वीजी के पास जाकर पंडितजी ने पूछा, "माताजी ! इस "चाक, चिक" का अर्थ क्या है ? यह श्लोक मेरी समझ में नहीं आया । कृपा करके इसका अर्थ आप बताएँगी ?"

प्रौढ साध्वीजी, जिनका नाम याकिनी महत्तरा था, उन्होंने जवाब दिया - भाई, रात्री के समय हम किसी भी पुरुष के साथ बात नहीं कर सकते, यह हमारी मर्यादा है । इस मर्यादा का पालन हमारे लिए उचित और हितकारी है । उपदेश देने का काम हमारे आचार्य महाराज का है । वे ही आपको इसका अर्थ समझाएँगे । साध्वीजी के मुख से, धीर-गंभीर स्वर से कही हुई बात पंडितजी ने सहर्ष स्वीकारी

और आचार्यश्री जहाँ विराजित थे वहाँ गए । वंदन किया, सम्मानपूर्वक जैनाचार्य श्री जिनभद्रसूरि महाराजजी के पास बैठे । आज तक जैन साधुओं से दूर रहनेवाले पंडितजी जब उनके संपर्क में आए तो उनकी पवित्रता, विद्वत्ता, उदारता से अत्याधिक प्रभावित हुए, उनका निर्मल हृदय उनके चरणों में झुक गया ।

सहज जिज्ञासावश उन्होंने पूछा "भगवन् ! माताजी के मुख से जो श्लोक सुना, उसका अर्थ समझाने की कृपा करेंगे ?"

आचार्य महाराजश्री ने जैनशास्त्रानुसार काल का वर्णन-अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी इत्यादि का स्वरूप विस्तार से पंडितजी को समझाया । "एक अवसर्पिणी काल में क्रमशः दो चक्रवर्ती, पाँच वासुदेव, पाँच चक्रवर्ती, एक वासुदेव, एक चक्रवर्ती, एक वासुदेव, एक चक्रवर्ती, एक वासुदेव, दो चक्रवर्ती, एक वासुदेव, एक चक्रवर्ती, इसी प्रकार उत्सर्पिणी काल में भी बारह चक्रवर्ती तथा नौ वासुदेव होते हैं ।"

जैन सिद्धांत में काल आदि का इतना गहन, और व्यापक स्वरूप को सुनने के बाद हरिभद्र का अपने ज्ञान का जो गर्व था वह पानी-पानी हो गया । उनका ऋजु हृदय और ऋजु हो गया । उन्हें अब 'जैन दर्शन शास्त्र का अध्ययन करने की लगन लग गई । साथ ही उन्होंने जो प्रतिज्ञा की थी उसकी पूर्ति भी की ।

आचार्य महाराज से उन्होंने जैन दीक्षा अंगीकार की । श्री जिनमंदिर में विराजमान श्री वीतराग परमात्मा की भव्य मूर्ति के दर्शन करते ही उन्हें नई दृष्टि प्राप्त हो गई । मिथ्यात्व का अंधेरा दूर हो गया । और सहसा हृदय भावनाओं से ओतप्रोत हो गया और बोल उठे -

"वपुरेव तवाचष्टे, भगवन् वीतरागताम् ।"

हे भगवन् ! आपकी आकृति ही स्पष्ट बता रही है कि आप राग-द्वेष आदि दोषों से परे हैं, वीतरागता का साक्षात् स्वरूप हैं ।"

दीक्षा लेने के बाद उन्होंने जैन आगमों का गहरा ज्ञान प्राप्त किया । जैसे-जैसे ज्ञान बढता गया, वैसे-वैसे साधुश्री हरिभद्र के अंतःकरण में दिव्य दृष्टि का तेज प्रगट होने लगा । संसार सागर से तारनेवाला यह जैन आगम है, बडा ही उपकारकर्ता है, इसपर उनकी श्रद्धा दृढ़ हो गई ।

श्री जिनेश्वर देव की भक्ति करते-करते उनकी आत्मा से मानो आवाज निकली "हे त्रिलोकनाथ ! दु:षमकाल के हम मिथ्यात्व इ. से दूषित हमारे जैसे अनाथ आत्माओं को तुम्हारे आगमशास्त्र अगर न मिले होते तो हमारा क्या होता ?

उन्होंने धर्मग्रंथ की रचना करना प्रारंभ किया । और आचार्यपद को सुशोभित किया परंतु जिनके कारण वे इस पद तक पहुँचे उन प्रथम मार्गदर्शक जिनके गाथा का श्रवण किया और अर्थ जाना उन याकिनी साध्वीजी को अपनी धर्म माता माना उन्हें वे कभी भूले नहीं । इसीलिए वे जैनशास्त्र में 'याकिनी-धर्मपुत्र' के नाम से प्रसिद्ध हुए ।

अपने जीवनमंत्र में उन्होंने अनेक महान ग्रंथों की रचना की । जैसे नंदीसूत्र अनुयोगसूत्र, आवश्यक सूत्र इ. आगमों पर विराट टीकाओं की रचना की । षड्दर्शन-समुच्चय, ललित विस्तरा नामक चैत्यवंदन सूत्रवृत्ति, पंचाशक, योगबिंदु, योगविशिका, धर्मबिंदु इ. उनके ग्रंथ प्रसिद्ध है । उनका साहित्य विविध मौलिक, गहरा चिंतशील है । उन्होंने 1444 ग्रंथों की रचना की है । 1440 ग्रंथ तो लिखे गए थे सिर्फ चार ग्रंथ लिखने बाकी थे । उन्होंने चार ग्रंथ के स्थानपर 'संसार-दावानल' शब्द से प्रारंभ होनेवाली चार स्तुतियाँ लिखी । उनमें से चौथे श्रुतदेवी की स्तुति का प्रथम चरण रचा और उनकी बोलने की शक्ति जाती रही । तब शेष तीन चरणरूप स्तुति उनके हृदय के भावों के अनुसार श्री संघ ने रची । तब से वे तीन चरण श्रीसंघ द्वारा 'झंकाराराव पक्खी और संवत्सरी प्रतिक्रमण'में उच्च स्वर से बोलते हैं ।

- "जैन शासनना चमकता सितारा"में से साभार

श्री अनंतनाथ जिन स्तवन

1. धार तलवारनी सोहिली दोहिली

धार तलवारनी सोहिली दोहिली, चउदमा जिनतणी चरणसेवा,
धार पर नाचता देख बाजीगरा, सेवनाधार पर रहे न देवा. धा०१
एक कहे सेविये विविध किरिया करी, फल अनेकांत लोचन न देखे,
फल अनेकांत किरिया करी बापडा, रडवडे चार गतिमांहे लखे धा०२

गच्छना भेद बहु नयण निहालता, तत्त्वनी वात करतां न लाजे !
उदयभरणादि निजकाज करतां थका, मोह नडिया कलिकाल राजे धा०३

वचन निरपेक्ष व्यवहार झूठो, कह्यो, वचन सापेक्ष व्यवहार साचो,
वचन निरपेक्ष व्यवहार संसारफल, सांभली आदरी कांई राचो ? धा०४

देवगुरु धर्मनी शुद्धि कहो किम रहे ? किम रहे शुद्ध श्रद्धान आणो !
शुद्ध श्रद्धान विण सर्व किरिया करी, छार पर लिंपणु तेह जाणो धा० ५

पाप नहीं कोई उत्सूत्र भाषण जिश्यो, धर्म नहीं कोई जगसूत्रसरिखो,
सूत्र अनुसार जे भाविक किरिया करे, तेहनुं शुद्ध चारित्र परखो धा०६

एह उपदेशनो सार संक्षेपथी, जे नर चित्तमां नित्य ध्यावे,
ते नरा दिव्य बहुकाल सुख अनुभवी, नियत आनंदघन राज पावे धा०७

लोभनी सज्झाय

तमे लक्षण जो जो लोभनां रे, लोभे मुनिजन पामे क्षोभना रे,
लोभे डाह्या मन डोल्या करे रे, लोभे दुर्घट पंथे संचरे रे. त० १

तजे लोभ तेहना लऊं भामणां रे, वळी पाये नमी ने करुं खामणां रे,
लोभे मर्यादा न रहे केहनी रे, तमे संगत मेलो तेहनी रे. त० २

लोभे घर मेली रणमां मरे रे, लोभे उंचुं ते नीचुं आदरे रे,
लोभे पाप भणी पगलां भरे रे, लोभे अकारज करता न ओसरे रे. त० ३

लोभे मनडुं न रहे निर्मळुं रे, लोभे सगपण नासे वेगळुं रे,
लोभे न रहे प्रीति ने पावठुं रे, लोभे धन मेळवे बहु अेकठुं रे. त० ४

लोभे पुत्र पोते पिता हणे रे, लोभे हत्या पातिक नवि गणे रे,
ते तो दाम तणे लोभे करी रे, उपर मणिधर थाअे ते मरी रे. त० ५

जोतां लोभनो थोभ दीसे नहीं रे, अेवुं सूत्र सिद्धांतो कह्युं सही रे,
लोभे चक्री सुभूम नामे जुवो रे, ते तो समुद्रमांहे डूबी मुओ रे, त० ६

अेम जाणीने लोभने छंडजो रे, अेक धर्मशुं ममता मांडजो रे,
कवि उदयरतन भाखे मुदा रे, वंदु लोभे तजे तेहने सदा रे. त० ७

B. शास्त्र दृष्टि से ट्रस्टी

कर्म योग के कारण बने संसार में जीवात्मा अनेक प्रकार के पाप करके धन प्राप्त करता है । पाप से कमाया धन उसी मार्ग में खर्च होता है-भोगविलास में और मौज शोख-खाने खिलाने में ।

जैसे उसर भूमि में डाले बीज को कभी भी अंकुर नहीं फूटते, फल की तो बात ही नहीं । बीज निष्फल जाता है । वैसे ही भोगविलास में खर्च किया धन पुण्यकर्म बंध जैसे फल दे नहीं सकता । बल्कि आत्मा का घातक बनता है । इसीलिए समझदार, जागरुक श्रावक को अपने धन का विनिमय भोगविलास में न कर सात तरह की फलद्रुप भूमि में लगाना चाहिए ।

व्यापारी अपना धन व्यापार में लगाता है । व्यसनी अपना धन व्यसन सेवन में खर्च करता है । भोगियों का धन भोग-विलास में नष्ट करता है । वेश्याओं का धन सौंदर्य-प्रसाधनों में खर्च होता है । कृपण का अपना धन बेंकों में दबा रहता है । किसी विरले पुण्यात्मा का धन जिनशासन के सात क्षेत्रों में सदुपयोग में लगता है ।

इन महान सात क्षेत्रों का व्यवहार सँभालनेवाले अधिकारी में कौन से गुण होने चाहिए, आज के ट्रस्टियों का जीवन कैसा होना चाहिए ? नूतन जिनालय उपाश्रयों का निर्माण करने से पहले उनका लक्ष्य क्या होना चाहिए और जिनशासन के सात क्षेत्रों का व्यवहार किस प्रकार करना चाहिए ? इस संबंध में विचार करेंगे ।

शास्त्र द्रष्टि से ट्रस्टी बनने की योग्यता :

1. जिनका कुटुम्ब-परिवार धर्म के रंग से रंगा हुआ हो ।

2. जो न्याय-नीति के मार्ग से धन कमाता हो ।

(आज इन्कमटेक्स इ. के बारे में भी यथाशक्य दोषों से बचनेवाला हो ।)

3. जो लोगों का आदरपात्र हो ।

4. जिनकी कुलपरंपरा उज्ज्वल हो ।

5. जो धर्म क्षेत्र में उदार दिल से यथाशक्य दान करनेवाला हो ।

6. जो धर्मक्षेत्र की रक्षा करने में वीर हो ।

7. जो धर्मद्रव्य की व्यवस्था करने में कुशल हो ।

8. जिसका हृदय धर्म के रंग से रंगा हुआ हो ।

9. जो सुगुरु की सेवा में सदा तत्पर हो ।

10. जो सुश्रुषादि बुद्धिवाले आठ गुणों से युक्त हो ।

11. जो शास्त्र के नियमों और सद्गुरुदेव की आज्ञा का प्रामाणिकता से पालन करनेवाला हो ।

12. जो यथाशक्य श्रावक के आचारों का पालन करनेवाला हो । इस प्रकार अनेक गुणों से युक्त आत्मा-परमात्मा की पेढी का व्यवहार सँभालते-सँभालते तीर्थंकर नाम कर्म बाँध सकता है और अल्पसंसारी बनता है ।

शास्त्रों में इसका उल्लेख है इस बात को गंभीरता से समझना चाहिए ।

सूचनाएँ :

1. ट्रस्टी बारह व्रतधारी श्रावक होना चाहिए । कम से कम एकाद व्रत तो धारण करनेवाला होना ही चाहिए । श्रावक के लिए रात्रीभोजन का त्याग, कंदमूल का त्याग, नवकारशी का पच्चक्खाण, और स्वद्रव्य से जिनपूजा, नमस्कार महामंत्र का जाप, गुरुवंदना, जिनवाणी का श्रवण इ. नियमों का तो उसे अवश्य पालन करना चाहिए ।

2. ट्रस्टी को अपना सद्गुरु अवश्य होना चाहिए । व्यवहार करते समय कोई कठिनाई आये तो गुरुभगवंत की सलाह-सूचना का उपयोग हो सकता है ।

3. ट्रस्टी के सूत्र सँभालने से पूर्व एकबार जीवन में जो पाप हुए हों उनकी भवआलोचना करके जीवनशुद्धि कर लेनी चाहिए ।

4. आज के मोर्डन जमाने में जो बेछूट मांसाहार, शराब पीना, व्यभिचार, जुँआ, क्लब आदि चल रहा है उन पापों का तो साया भी ट्रस्टी पर नहीं होना चाहिए ।

5. ट्रस्टी को अधिक से अधिक समय पेढी पर बिताना चाहिए । कम से कम एक घंटा तो पेढी पर बैठकर सारे हिसाब-किताब की जाँच करनी चाहिए । धर्मादाय का एक नया पैसा भी इधर-उधर नहीं जाना चाहिए । इसका वफादारी से ध्यान रखना चाहिए ।

6. ट्रस्टी के विचार उच्च और उदार होने चाहिए । स्टाफ के लोगों के प्रति उसका व्यवहार बहुत ही आदर, सम्मान और कोमल होना चाहिए । फिर भी कोई

गलती नजर आ जाय तो कठोर भी होना पडे तो होना चाहिए पर ट्रस्ट में अँधाधुँध कारोबार को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए ।

7. आज की राजनीति में शिफारस के बिना कोई काम होता ही नहीं, इससे धर्मस्थानों की सुरक्षा करना बडा कठिन होता जा रहा है । अतः धर्मस्थान और ट्रस्टी की सुकीर्ति सरकार तक पहुँचनी ही चाहिए कि यहाँ का कारोबार एक नंबर में है दो नंबर की कोई गुंजाईश ही नहीं है । इतना स्वच्छ व्यवहार ट्रस्टी का होना चाहिए ।

8. ट्रस्टी को अपने संघ में आने/जानेवाले मुनिवरों के प्रति मान, सम्मान और आदर होना चाहिए । सुसाधु भगवंत का समागम श्रीसंघ को अधिक से अधिक मिले, कैसे मिले इसकी चिंता होनी चाहिए । साथ-साथ जिनकी जीवनचर्या देखकर लोगों में अनास्था निर्माण हो ऐसे शिथिलाचारी साधु को कडक शब्दों में समझ देने में भी हिचकिचाना नहीं चाहिए ।

9. श्रीसंघ के साधारण खाते में घाटा न आवे और वह खाता हमेशा चलनवलन में रहे इसके लिए ट्रस्टी को प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

10. ट्रस्टी ने जिस बैंक में संघ का खाता खोला हो उस बेंक में अपना खाता नहीं खोलना चाहिए । संघ के नाम पर या क्रेडीट पर बैंक का लोन अपने निजी व्यवसाय या काम के लिए नहीं लेना चाहिए ।

11. जिनालय में जब बोली, बोली जाती है तब ट्रस्टी ने बोली बोली हो तो वे रुपये शीघ्रातिशीघ्र ट्रस्ट में जमा कर देने चाहिए और दूसरों से भी तुरंत वसूल कर लेने चाहिए ।

12. ट्रस्टी ने "द्रव्य सप्ततिका" नाम के ग्रंथ का अभ्यास गुरुचरण में बैठकर अवश्य कर लेना चाहिए । सभी खाते का व्यवहार शास्त्रनीति के अनुसार ही चलाना चाहिए ।

13. अपने धर्मस्थान में रात्रिभोजन/अभक्ष्य-भक्षण/द्विदल/नवरात्री के गरबे / डिस्को डान्स आदि धर्मनाशक प्रवृत्तियाँ बिल्कुल नहीं होनी चाहिए ।

14. ट्रस्टी में नये ट्रस्टी की नियुक्ति करने का प्रसंग आ जाय तो इलेक्शन के बजाय सिलेक्शन को विशेष प्राधान्य देना चाहिए । धर्मादाय ट्रस्ट के लिए इलेक्शन पद्धति खतरनाक है । ऐसा गुजरात हाइकोर्ट ने एक जजमेन्ट दि. ९-११-१९७२ में दिया था ।

15. आज के युग में शराब और मांसाहार करना यह सामान्य बात हो गई है । अधिकतर वर्ग इस पाप में फँसाजा रहा हैं । अतः धर्मस्थानों में नोकरों को रखते समय इस बात की पूरी चिकित्सा करनी चाहिए । शराबी और मांसाहारी को धर्मस्थान में स्थान नहीं देना चाहिए । (एक उपाश्रय में नौकर रात को मछलियाँ पकाते पकडा गया था ।)

तीर्थ और ट्रस्टी

जैनों के प्राचीन अनेक तीर्थ आज विद्यमान हैं । जिनकी व्यवस्था स्थानिक संघ संभालते थे । माउन्ट आबु का देलवाडा मंदिर बँधवाने के बाद मंत्रीश्वर वस्तुपाल ने पहाड के आजुबाजु के बारह गाँववालों को सारी व्यवस्था सौंपी थी । व्यवस्था इस प्रकार की गई थी कि हर महीने एक गाँव का संघ उपर आएँ, स्नात्रपूजा करे, देखभाल करे, और जो कुछ भी वहाँ करने योग्य कार्य हो तो वे करे। अगले महीने में आनेवाले गाँव के संघ के लिए कुछ सूचनाएं देनी हों तो नोटबुक में लिखकर रखते थे । इसप्रकार बहुत ही सुव्यवस्थित रूप से तीर्थ की व्यवस्था होती थी ।

तारंगाजी की व्यवस्था वडनगर के श्रावक सँभालते थे । जिनालय के अखंड दीपक के घी की व्यवस्था लगभग पंद्रह गाँवों में सौंपी जाती थी । वर्ष में एक बार पूजारी पात्र लेकर जाता था, अपनी बारीनुसार सभी शुद्ध घी देते थे जो अखंड दीपक के लिए उपयोग में लिया जाता था । आज भी ऐसी ही व्यवस्था वहाँ चल रही है ।

इस पर से यह निश्चित समझ में आता है कि तीर्थ की व्यवस्था गाँववाले ही किया करते थे । परंतु देश-काल-परिस्थिति में परिवर्तन आया, गाँव रहे नहीं । व्यवस्था रखनेवाले रहे नहीं । अतः बहुत से संघोंने गाँववालों ने अपनी जिम्मेदारी श्री आणंदजी-कल्याणजी की पेढ़ी को सौंपी । आज यह पेढ़ी अनेक तीर्थों की व्यवस्था बखूबी निभा रहे हैं ।

प्राचीन तीर्थों की व्यवस्था, देखभाल का प्रश्न था ही और उसमें नये तीर्थों का निर्माण हुआ, इससे व्यवस्था का प्रश्न ओर जटिल हो गया । अब नये ट्रस्टीओं को कार्यभार सौंपना आवश्यक हो गया । प्राचीन नए तीर्थों की व्यवस्था करने के लिए यह आवश्यक था । परंतु कहते हुए बडी खुशी हो रही है कि बहुत से

भाग्यशाली श्रावकों ने स्वयं आगे आकर ट्रस्ट में भाग लिया है और बड़ी सफलता से कार्यभार सँभाल रहे हैं । इन सब स्वयंसेवक ट्रस्टी भाईयों को लाख-लाख धन्यवाद ! क्योंकि आज व्यस्तता भरे जीवन में सबकुछ मिल सकता है पर समय देने के लिए किसी के पास समय ही नहीं है, इसीलिए धर्मकार्य क्षेत्र में जो समय का अनुदान देते हैं वे वास्तव में धन्यवाद के पात्र हैं । आप जानते हैं इस प्रकार निःस्वार्थ धार्मिक क्षेत्र की सच्ची लगन से सेवा करने का फल क्या मिल सकता है ? तीर्थंकर गोत्र उपार्जन किया जा सकता है । ऐसा अनूठा लाभ कोई पुण्यशाली महानुभाव ही उठा सकता है ।

ऐसा अति श्रेष्ठ पुण्य उपार्जन करानेवाला धर्मस्थान का ट्रस्टी पद प्राप्त करने के बाद नैतिक जिम्मेदारी बढ़ जाती है कि जो पद मिला है अथवा स्वीकार किया है तो उसे पूर्ण प्रामाणिकता से निभाना चाहिए । इसमें अगर लोभ या लालच किया, नैतिक मूल्यों का पालन नहीं किया तो तीर्थंकर नाम कर्म की बात छोडिए कहीं दुर्गति के चक्कर न काटने पड़े ! इस जन्म में दुःख, कष्ट तो भुगतने ही पड़ेंगे और भवभ्रमण तो बढ़ेगा ही इसलिए ऐसी कोई गलती न हो जाय जिससे नीच गति में भटकना पड़े इसका पूरा-पूरा ख्याल रखना ट्रस्टी का महत् कर्त्तव्य है ।

'ट्रस्टी' पर लोगों का इतना ट्रस्ट (भरोसा, विश्वास) होता है कि इस विश्वास के कारण वे ट्रस्टी पर कोई दाग नहीं लगाते । स्थानिक संघों में चातुर्मासार्थ पधारनेवाले पू. आचार्यदेव या मुनिवर भी ट्रस्टियों को नाराज कर नाहक क्यों चातुर्मास का वातावरण बिगाडे ? ऐसा विशाल विचार करके वे भी ट्रस्टियों की प्रशंसा ही करते हैं, कुछ नहीं कहते । परिणाम स्वरूप ट्रस्टीगणों को मिथ्या समझ हो जाती है कि अपनी कोई भूल होती ही नहीं ! अतः भूल हो भी जाए तो सुधारने का अवसर कहाँ ? कहे कौन ? होली का नारियल बने कौन ?

खैर ! ट्रस्टी लोग ध्यान में रखे ऐसी कई सूचनाओं का उल्लेख बडी स्पष्टता से रखने का प्रयत्न किया है । ट्रस्टीयों की भलाई को ध्यान में रखकर ही अपनापन दिखाया है । इसलिए कि जैनशासन की व्यवस्था में गडबड-घोटाला चले यह कदापि स्वीकार्य नहीं है । यह जागृत, जिवंत, शाश्वत, तीर्थस्थान, धर्मस्थान का व्यवहार स्वच्छ, सुंदर और सुव्यवस्थित रखना । यह प्रत्येक ट्रस्टी का प्रथम कर्त्तव्य है । इसको ध्यान में रखकर निम्नलिखित सूचनाओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए ।

1. तुम्हारे ट्रस्ट के स्थानवर/जंगम मिलकतों की दस्तावेजों की पूरी पूरी जानकारी रखनी चाहिए ।

2. ट्रस्टीगणों की मीटिंग में किसी भी प्रकार का निर्णय लेना हो तो व्यक्तिगत राग-द्वेष को नजरअंदाज करके प्रभु के शासन की सेवा का यह मौका है इसे ध्यान में रखकर योग्य निर्णय लेना चाहिए । ट्रस्ट में अमुक नाम के व्यक्ति से मित्रता है इसलिए उनकी बात को बढावा देना और अमुक व्यक्ति की बात को काट डालना ऐसा चूहा-बिल्ली का खेल ट्रस्ट की मीटिंग में नहीं खेलना चाहिए ।

3. जो भी निर्णय लेना है वह तुम्हारी अपनी नीति से नहीं बल्कि शास्त्र की आज्ञा और जिनशासन की परंपरा को ध्यान में रखकर लेना चाहिए ।

4. जिस तीर्थ के तुम ट्रस्टी हो वहाँ तुम्हें महीने में कमसे कम एक बार तो अचानक विजिट देनी चाहिए । तीर्थ क्षेत्र का कामकाज किस प्रकार चल रहा है इसका स्वयं निरीक्षण करते रहना चाहिए । अगर समय का दान नहीं दे सकते हो, तो एक साथ दो चार तीर्थों का ट्रस्टी बनने का और उससे केवल प्रशंसा, प्रसिद्धि पाने का मोह नहीं रखना चाहिए ।

5. जिस बेंक में ट्रस्ट जो रुपयों का फिक्स डिपॉझिट किया हो उसी बेंक में ट्रस्टी ने अपना पर्सनल खाता नहीं खोलना चाहिए ।

7. तीर्थ का नया बांधकाम कराना हो तब सूक्ष्मता से निरीक्षण कर सके ऐसे विश्वासपात्र व्यक्ति की नियुक्ति करनी चाहिए । जिससे बांधकाम अच्छी तरह हो सके ।

7. धर्मशाला R.C.C. में बाँधने के बजाय पत्थर में बनाए तो अधिक मजबूत बांधकाम होता है, खर्च भी R.C.C. जितना ही होता है । पथ्थर से किया गया बांधकाम अच्छा भी दिखाई देता है जैसा उपरीयालाजी में धर्मशाला बँधवाई गई है ।

8. किसी तीर्थ में देवद्रव्य की आवक अच्छी हो तो अन्य तीर्थ स्थलों में जीर्णोद्धार के लिए उदारतापूर्वक रकम देनी चाहिए । पर अपने तीर्थ के पैसे अपने ही मंदिर में ही उपयोग में लेना है ऐसा संकुचित विचार नहीं रखना चाहिए । बिनजरूरी काम निकालकर तीर्थक्षेत्र में काम करना और पैसा खर्च डालना इससे देवद्रव्य का विनियोग अस्थाने पर करने का दोष लगता है । कई जगह तो जानबूझकर अच्छे खासे फ्लोरिंग तोडना ओर पुनः बनाना अच्छे शिखर तोड़कर

पुनः नए बनाना, इस प्रकार बिनजरूरी खर्च शुरू करने से पहले सो बार सोचना चाहिए, जिससे तीर्थ-स्थान की अवहेलना करने का दोष न लग जाय, तीर्थक्षेत्र में कार्यरत रहते हुए पुण्योपार्जन के बदले मायाशल्य के पाप के भागीदार न बन जाएँ ।

9. तीर्थ-स्थान में काम करने के लिए प्रामाणिक कर्मचारी मिलना भी कठिन हो गया है । अतः शुरू से ही इस प्रकार के लोगों के बारे में खोजबिन शुरू कर देनी चाहिए ।

10. बहुत से तीर्थस्थानों में स्थानिक 'दादा' लोग अड्डा जमाकर बैठते हैं, उन्हें रोक लगानी चाहिए । कई तीर्थस्थानों में संडास, बाथरुम, गरमपानी, इत्यादि का उपयोग स्थानिक लोग बेझिजक करते हैं । उन पर भी अंकुश रखना चाहिए ।

11. तीर्थस्थानों में आसपास रहनेवाले कर्मचारियों को रखना चाहिए । तीर्थस्थान की वस्तुएँ, गादी, थाली-कटोरी नए घड़े इ. कर्मचारियों को घर पिछले दरवाजे से पहुँच जाते हैं । एक तीर्थ में अजैनों की बहुत बड़ी बस्ती है, सुना है उनके घर में तीर्थ की बहुत-सी वस्तुएँ मिली । तो इसका भी ध्यान रखना चाहिए ।

12. तीर्थस्थानों में लग्न समारंभ के लिए धर्मशाला, भोजनालय का उपयोग नहीं करना चाहिए ।

13. तीर्थस्थान की जमीन संबंधी जो भी कागजात, दस्तावेज इ. है उनका अपटूडेट रेकोर्ड रखना चाहिए ।

14. जहाँ अधिष्ठायकों के अलग स्थान हो वहाँ श्वे.मू.पू. संघ की पद्धतिनुसार दरवाजे पर जिनबिंब की आकृति खुदवा लेनी चाहिए । इसी प्रकार होज, तालाब इ. पर शीलालेख खुदवा कर स्थायी रूपसे फिट करा देना चाहिए । किसी भी स्थान की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए ।

15. हर छ महिने के बाद स्वयं हाजिर रहकर संपूर्ण तीर्थस्थान की सफाई करानी चाहिए । जिनालय चारों तरफ से सुंदर, साफ-सुथरा होना चाहिए ।

16. जिनालय में धूप-दीप के पात्र भी स्वच्छ होने चाहिए ।

17. तीर्थ के उपकरण बडे, विशाल और सुंदर होने चाहिए । पंखे, चामर, दीया, धूपिया, इ. चार-चार रखने चाहिए । जिससे यात्रिक का समय राह देखने में न बीते ।

18. यात्री, भंडार में देवद्रव्य डालते हैं, उन्हें चुराने की प्रवृत्ति तीर्थस्थान में काम करनेवालों की हो सकती है, ऐसा अनुभव आया है । इसलिए दानपेटी की कुशलता से रक्षा करनी चाहिए ।

19. भंडार के पैसे गिनते समय कम से कम तीन ट्रस्टी तो हाजिर होने ही चाहिए । यह शास्त्र मर्यादा है । धन-संपत्ति का मोह इतना जबरदस्त होता है कि भले-भले उसमें अपनी नीतिमत्ता भूल बैठते हैं । जिनकी वृत्ति बुरी हो तो चोरी के हजार रस्ते मिल जाते हैं । पैसों के बारे में सावधानता बरतना बहुत ज़रूरी है ।

20. तीर्थस्थान में आचार्य देव, मुनिराज विराजमान हों तो प्रथम उन्हें वंदन करने जाना चाहिए । उनसे तीर्थ के संबंध में सलाह मशवरा करना चाहिए । ट्रस्टी गण इस प्रकार औचित्य सँभालेंगे तो तीर्थस्थान के अन्य कर्मचारी भी उस प्रकार का बर्ताव रखेंगे ।

21. ट्रस्टी अपने स्वयं के कारोबार का जैसा ख़याल रखता है । इन्कमटेक्स, सेलटेक्स का जैसा ध्यान रखता है उसी प्रकार धर्मशासन के नियमों का भी ख़याल रखना चाहिए ।

22. बहुत से तीर्थस्थानों में ट्रस्टी लोगों के लिए बनाई गई ऑफिस आधुनिक सुविधा से पूर्णतः सुसज्ज होती है । परंतु ऐसी सुविधा भोगते समय इसका ख्याल रखना चाहिए कि समाज के पैसों का मैं मुफ्त में उपभोग कर रहा हूँ । क्या वास्तव में ऐशोआराम की सुविधा भोगने के लिए मैं ट्रस्टी बना हूँ ? या सेवा करने के लिए ? इसका विचार अवश्य करना चाहिए ? मैं ट्रस्टी हूँ इसलिए मेरा स्थान भी विशिष्ट है । ऐसा अभिमान नहीं करना चाहिए । नाहक का हक जताने की भूल ट्रस्टी कभी नहीं करें ।

23. ट्रस्टी मंडल में ट्रस्टी का चुनाव का मापदंड अधिकतर उनकी अपनी धनसंपन्नता पर आधारित होता है । फिर भी तीर्थ के कामकाज के निमित्त से जाना कहीं पडे तो उसका किराया इ. खर्चा तीर्थस्थान के खाते में लिखा जाता है और खर्चा ले लिया जाता है । जो श्रीमंत लोग अपने संसार के कामकाज के लिए, ब्याह-शादी में प्लेन से भी जाते हैं, उस खर्चे का बोझ वे उठा सकते हैं पर तीर्थ

के कामकाज संबंधी किराया इ. पेढ़ी की वही खाते में से दर्ज किया जाता है । कितनी करुणाजनक बात है ना ? तब कहना पड़ता है कि केवल धनवान है इसलिए ट्रस्ट में ट्रस्टी बनाने के बदले अच्छे गुणवान साधारण आदमी को ट्रस्ट में शामिल करें । जब कि अवसर आवे तो अपने गांठ के पैसे खर्च करने में आगे-पीछे नहीं देखे । बल्कि तीर्थ सेवा का लाभ मिला ऐसा सोचे । कंजूस लोग भगवान की पेढी पर शोभा नहीं देते । उदारता का गुण तो प्रथम होना चाहिए । अंतरिक्षजी, शिखरजी के केस के समय कितनी ही बार वासोम, नागपुर और हजारीबाग(बिहार) तक का प्रवास अपने खर्चे से करनेवाले पुण्यवान, उदारचरित्र श्रीमंत महानुभव आज भी विद्यमान हैं । प्रभु के शासन की यह सचमुच बलिहारी है ।

तीर्थस्थानों में बोर्ड पर लिखने योग्य नियम :-

1. यह तीर्थस्थान है । पवित्र भूमि है, यहाँ देवाधिदेव की भक्ति के लिए असंख्य देवी-देवता हाजिर हैं ।

2. तीर्थ की पवित्रता का भंग न हो इसलिए मर्यादा का पालन करना चाहिए । यह हिल स्टेशन नहीं, धर्मस्थान है यह हमेशा ध्यान में रहे ।

3. स्त्रियाँ देरासर में सिर पर पल्लु ओढे । खुला सिर न रखें ।

4. यहाँ पुरुष स्त्रियों के कंधे पर हाथ रखकर घूमे नहीं ।

5. हँसी-मज़ाक या गंदी बातें करे नहीं ।

6. ब्रह्मचर्य का पालन निर्मलता से करें ।

7. रात्रीभोजन न करें ।

8. आईस्क्रिम, कोल्ड्रींक्स, कंदमूल जैसे अभक्ष्य पदार्थों का सेवन करे नहीं ।

9. शराब, जुआँ जैसे व्यसनों का त्याग करें ।

10. तीर्थ के कम्पाउन्ड में सिगारेट बीड़ी पीना मना है ।

11. पान-मसाला, तमाकू चबाना नहीं । जहाँ-तहाँ थूकना नहीं ।

12. बेंचों पर अविवेक से बैठना नहीं ।

13. रेडियो, टेप, टी.वी. इ. का उपयोग करना नहीं ।

14. कागज के टुकडे, कचरा इ. जहाँ-तहाँ फैंकना नहीं ।

15. क्रिकेट, बॅडमिन्टन या ताश खेलना नहीं ।

16. जिनालय, देवस्थान, भोजनशाला, प्रवचनगृह या धर्मशाला के कमरों में चप्पल या जूते-चप्पल पहनकर जाना नहीं ।

17. धर्मशाला के कमरे, गादी, रजाई इ. का बेदरकारी से उपयोग न करें ।

18. व्यवस्था के संबंध में किसी भी प्रकार की शिकायत हो तो पेढी पर मिलना अथवा शिकायत पेटी में चिठ्ठी लिखकर डालना ।

19. कर्मचारियों को इनाम में रकम देना चाहते हों तो इनाम बॉक्स में डालना ।

20. M.C. वाली स्त्रियों को उस काल मर्यादा में देवस्थान में प्रवेश करना मना है ।

21. ठंडे या गरम पानी का उपयोग विवेकपूर्वक करना चाहिए ।

'चालो जिनालय जईअे' में से साभार

5. तीर्थ-परिचय

श्री शत्रुंजय महातीर्थ

1. पालीताणा का पहाड - जैनों का पवित्रतम यात्राधाम

पापी आत्मा को पवित्र बनाए उसका नाम पर्व.... और संसार सागर में डूबते जीवों को तिरा दें उसका नाम तीर्थ... पर्व कालाश्रित हैं.... तीर्थ क्षेत्राश्रित है, पर्व हमारे पास आते हैं । तीर्थ में हमें जाना पड़ता है । गतानुगतिक संसारी जीवन व्यतीत करनेवाले, जाने-अनजाने में अगणित पापों को गठरी बाँधनेवाले जीवों के लिए तीर्थ और पर्व दोनों स्पीड ब्रेकर का काम करते हैं ।

आर्यवर्त की इस पावन भूमि में समय-समय पर पर्व आते रहते हैं । वैसे ही तारणहार तीर्थों की भी कमी नहीं है । दीर्घद्रष्टा पूर्वजों ने चारों दिशाओं में तीर्थस्थानों की मालाएँ निर्माण की हैं ।

केवल भारत या दुनिया में ही नहीं परंतु तीनों लोक के तीर्थों में सर्वश्रेष्ठ अगर कोई तीर्थ है तो वह है पालीताणा का पहाड-**शत्रुंजय गिरिराज** !

तीर्थों में बनाई कला और सौंदर्य तो भावों की अभिवृद्धि में निमित्त मात्र है, पर तीर्थ की श्रेष्ठता का मापदंड हैं वहाँ के पवित्र परमाणु और प्रतिमाओं की प्राचीनता तथा प्रभावशालीता ।

श्री यशोविजयजी स्तवन में कहते हैं कि महाविदेह क्षेत्र में साक्षात् सदेह विहरमान श्री सीमंधर स्वामी भगवान भी इस तीर्थ की महानता की प्रशंसा करते हैं :-

कोई अनेरु जग नहीं अे तीरथ तोले,
अेम श्रीमुख हरि आगे श्री सीमंधर बोले....

ये तीर्थ तीनों लोक में अन्य तीर्थों की तुलना में श्रेष्ठतम-पवित्रधाम और अजोड़ है । इसके विशिष्ट प्रकार के चार कारण हैं -

1) यह तीर्थ प्राय: शाश्वत है - कालजनित आक्रमण इसका सर्वनाश करने में असमर्थ हैं । हाँ, कालानुसार कम ज्यादा प्रभाव हो सकता है, ऊँचाई में बढना-घटना संभव है । मंदिर और मूर्तियों की संख्या में भी बदलाव आ सकता है, पहले आरे में इस तीर्थ की ऊँचाई 80 योजन थी । समयचक्र के फेरे में तीर्थ

की ऊँचाई घटती गई । आज दिखाई देनेवाला विशाल काय पर्वत छठे आरे में केवल सात हाथ का रह जाएगा । कहा जाता है कि प्राचीन काल में पूरा पर्वत सुवर्ण का था । इसलिए उसका नाम कंचनगिरि भी है । आज तो समय के प्रभाव के कारण चारों तरफ बड़े-बड़े पत्थर दिखाई देते हैं ।

प्राचीन काल में हजारों-लाखों देवी-देवता इस तीर्थ की यात्रा करने आते थे । आज हमें वे चर्मचक्षु से दिखाई नहीं देते ।

इतना कुछ परिवर्तन हो जाने के बाद भी यह तीर्थ अड़िग खड़ा है और ऐसा ही रहेगा । कई आक्रमण हुए, नैसर्गिक आपतियाँ भी आई, मानवीय अत्याचार भी हुए पर इस तीर्थ क्षेत्र पर किसी भी प्रकार अनुचित्त परिणाम नहीं हुआ ।

2) इस तीर्थ क्षेत्र में रज-रज में अनंतानंत आत्मा मुक्त हो गये हैं ।

कर्मबंधन और कर्ममुक्ति में क्षेत्रीय प्रभाव भी काम करता है । यहाँ का एक-एक रज-कण पवित्र है, इस भूमि को संत-महंतों के चरणों ने पावन किया है, ऐसे तीर्थ की रज का स्पर्श होते ही कर्म की रज आत्मा पर से सहजता से झड़ने लगती है । अनंतकाल की कुवासना और कुविकारों की श्रृंखला टूटने लगती है ।

देख लो, इस पवित्र भूमि पर से परमपद को प्राप्त हुए पुण्यात्माओं की सूचि-

पुंडरीक स्वामीजी ने पाँच करोड मुनियों के साथ चैत्र पूनम के दिन इसी भूमिपर से परमपद को प्राप्त किया ।

कार्तिकी पूनम के दिन यहाँ लोगों का बहुत बड़ा मेला लगता है- "जय-जय श्री आदिनाथ" का नारा लगाते हुए पहाड़ चढ़ते जाते हैं, क्योंकि द्राविड वारिखील्लने इसी दिन दस करोड मुनियों के साथ सिद्ध पद को पाया था ।

फागुन सुदी तेरस के दिन तो लाखों भावुक लोग दुनिया के कोने-कोने से आकर तीर्थ का पावन स्पर्श कर धन्य हो जाते हैं । इस दिन यहाँ चींटियों जैसे मानव इकट्ठा होते हैं । पहाड़ के नीचे सैंकड़ो छावनियाँ खडी की जाती हैं । जहाँ पहाड पर से आनेवाले यात्रिकों को दही, ढेबरा इत्यादि पदार्थों से भावभरी भक्ति व्यक्त की जाती है । तीर्थ स्पर्शना से पावन हुई पुण्यात्माओं के चरणों का दूध से प्रक्षालन किया जाता है । लौकिक अर्थ में इसे 'ढेबरा-तेरस' भी कहा जाता है । इस दिन की इतनी महत्ता का कारण भी उतना ही महान है, यहाँ से साढ़े तीन करोड मुनियों के साथ शांब-प्रद्युम्न की मुक्ति हुई थी ।

इसके अलावा, जैन शास्त्रानुसार पाँच पांडव 20 करोड मुनियों के साथ, नमि-विनमि (ऋषभदेव के पौत्र) दो करोड मुनियों के साथ, नारद 91 लाख मुनियों के साथ, मुनि अजितसेन 17 करोड मुनियों के साथ, राम-भरत 3 करोड मुनियों के साथ, सोमयश 13 करोड मुनियों के साथ, इसके अलावा और भी अनाम असंख्य आत्माओं ने अनशन-संलेखना की आराधना कर इस भूमि पर कर्मक्षय करके शिवपद पाया है । इन सब अनंतानंत मुक्तात्माओं का प्रभाव आज भी अनुभव किया जा सकता है ।

3) प्रथम तीर्थपति श्री ऋषभदेव भगवान इस गिरि पर 99 पूर्व बार पधारे थे ।

(एक पूर्व यानी 70560 अब्ज वर्ष, याने कुल 69 क्रोडक्रोड 85 लाख क्रोड 44000 क्रोड वर्ष) यहाँ रायण वृक्ष के नीचे वे विराजमान थे । समवसरण रचे गए थे । ऋषभदेवने बारह पर्षदा में अगणित देशना का जलौध यहाँ बरसाया था । इसके सिवा नेमनाथ भगवान तथा अन्य बाईस तीर्थंकरों के पावन आगमन से इस पहाड़ को पावन बनाया है ।

असंख्य वर्ष बीत गए पर यह रायण का वृक्ष यहाँ खड़ा है । जिसके पत्ते-पत्ते पर देवताओं का वास है, ऐसा माना जाता है । अगर भावपूर्ण पूजा की जाय तो क्रोध इ. कम हो जाते हैं. । इस वृक्ष के तले छोटे से चबूतरे पर ऋषभदेव प्रभु के चरण स्थापित किए गए हैं । इस प्रकार परमात्मा के पावन चरण-रज के आवागमन से यह गिरिराज सर्व तीर्थक्षेत्र में अग्रगण्य है । इसकी महत्ता अबाधित है ।

वहाँ के अणु-रेणु में पवित्रता बिखरी हुई है । जिसके प्रभाव की गरिमा आज भी साक्षात् है ।

पहाड की ऊँचाई सवा दो माईल और 3750 सीढियाँ हैं फिर भी पाँच वर्ष के बच्चे से लेकर 95 वर्ष के वृद्ध भी खुशी-खुशी बिना थके पहाड़ चढ़ जाते हैं ।

भक्ति से ओतप्रोत कुछ भक्त तो एक साथ 99 यात्रा कर लेते हैं । 99 बार चढते, उतरते हैं ।

कुमुदचंद्रसूरि नाम के जैनाचार्य ने यह यात्रा 99 बार, 99 यात्राएँ की हैं । कुछ 10 हजार जितनी यात्राएँ की हैं ।

एक महात्मा ने तो चोविहार अट्ठम (तीन उपवास) का तप करके 17 यात्राएँ की हैं ।

कितने ही हृदय रोग के रोगी जो एक मंजिल तक भी चढ़ नहीं सकते थे वे पहाड चढ़ गए, यात्रा में उन्हें कुछ भी नहीं हुआ ।

चोविहार छठ्ठ (निर्जल दो उपवास) करके दो दिन में 7-7 बार यात्रा करनेवाले भावुक साधक भी हैं । भाव से विधिसहित चोविहार छठ्ठ उपवास कर सात बार यात्रा करनेवाले की तीसरे भव में मुक्ति हो जाती है ।

आँधी-तूफान हो, या वैशाख मास की भयंकर गरमी हो तो भी हजारों यात्री सहजता से पहाड पर चढ़ जाते हैं, यही इस तीर्थभूमि का साक्षात् चमत्कार है ।

जिन्होंने अपने जीवन काल में नवकारसी जैसा छोटा तप या पच्चक्खाण भी नहीं किया हो परंतु यहाँ आकर मासखमण जैसी घोर तपस्या हँसते-खेलते कर डालते हैं । ऐसे तो कई उदाहरण हैं ।

इस तीर्थ के प्रभाव से रोगी के जीवनभर के रोग किसी भी प्रकार की दवा लिए बिना जड़मूल से मिट जाते हैं ।

एक भाई, जो अस्थमा की बीमारी से परेशान थे इतने कि बस, अब दो-चार दिन के ही मेहमान है, ऐसा लगता था । उन्हें शत्रुंजय चढ़ने की भावना हुई । डोली साथ में रखी पर उसमें बैठे नहीं । कमर पर हाथ रखकर एक-एक सीढ़ी चढ़ते रहे, चार घंटे चलकर आदिश्वर दादा के चरणों तक पहुँचे । दादा की सच्चे दिल से भक्ति की । पता नहीं क्या चमत्कार हुआ ? तेज गति से पहाड उतर गए । वर्षों की अस्थमा की बीमारी छुमंतर हो गई । अब तो एक भी दवा की गोली नहीं लेनी पड़ती । यह भी चमत्कार ही है ।

व्यसनाधीन के व्यसन क्षण में छूट जाते हैं, इस तीर्थ के प्रभाव से 60 वर्षों से रोज 25 बीडियाँ फूँकने वालों, दस कप चाय पीनेवालों एक व्यक्ति ने बहुत प्रयत्न किये, पर बीडी छोड नहीं सकते थे । पर गिरिराज की छत्रछाया में चातुर्मास करने की भावना हुई, बीडी छूटे इसलिए इस भाई ने चार महीने बियासना किया, बियासना में बीडी तो पी ही नहीं सकते, दो-चार दिन सिर में दर्द हुआ, उल्टियाँ हुई । फिर तो इतनी धार्मिक प्रवृत्ति बढ़ी कि ब्रह्मचर्य के पच्चक्खाण भी लिए । वृद्धावस्था में भी इस भाई ने वीस स्थानक तप की आराधना की ।

प्रभु ऋषभदेव ने एक वर्ष तक निर्जल उपवास किए थे । उसी के प्रतिक रूप भारतभर में हजारों आत्मा वर्षीतप (एक वर्ष तक कठिन तप) करके वैशाख

सुद-३ के दिन यहाँ पारणा करने के लिए आते हैं । एक वर्ष की तपश्चर्या के बाद यहाँ आकर भयंकर गरमी से 2/3/4 से 8/8 उपवास कर, दादा के दर्शन कर, इक्षुरस से पारणा करनेवाले सैंकडो भव्यात्माओं को देखकर मस्तक झुके बिना नहीं रहता । इस पावन भूमिपर कोई अलौकिक दिव्य तत्त्व काम कर रहा है ऐसा ही विश्वास निर्माण होता है ।

4) इस तीर्थ की महत्ता का चौथा कारण यह, है कि एकबार भी जो आत्मा इस धरती की स्पर्शना करता है, वह नियमा भव्य (मोक्ष पाने के योग्य) है यह निश्चित हो जाता है । पापी ओर अभव्य आत्माओं का गिरिराज का दर्शन दुर्लभ है । इसलिए कहा गया है कि -

पापी अभव्य ने नजरे न देखे
हिंसक पण उदधरिये..... विमलगिरि
पशु पंखी जे इण गिरि आवे
भव त्रीजे ते सिद्ध ज थावे ।
अजरामर पद पावे ।

अत: शायद ऐसा एक भी जैन नहीं होगा, जिसने शत्रुंजय के दर्शन न किये हों । बालक 2/3 वर्ष का होते ही तुरंत उसे यात्रा कराने का रिवाज भी जैनों में प्रचलित है । जिससे 'भव्यत्व' की मुहर लग जाय । ऐसी भी किंवदन्ती है कि "जिसने शत्रुंजय के दर्शन किए नहीं वह अभीतक गर्भ के बाहर आया ही नहीं । तभी तो जैनेतर और विदेशी भी दादा के दर्शन करना नहीं चूकते ।

इसी वाक्य को सुनकर ही कट्टर शैव धर्मी गुर्जर नरेश सिद्धराज जयसिंह के मन में दादा के दर्शन की उत्कंठा जागी थी । सोमनाथ से वापस आते समय वे अपनी सवारी के साथ पालीताणा की ओर गए । उनके स्वधर्मी कट्टरधर्मियों ने उनका बहुत विरोध किया । तब पानी भरनेवालों का वेश पहनकर पानी के डिब्बे कंधों पर लेकर गुजरात का राजा पहाड चढा । पैरों में छाले पड गए । कंधों पर निशान पड़ गए । थकावट से एक पैर आगे बढ़ाना कठिन हो रहा था । साँस फूल रही थी । फिर भी यात्रा करने का दृढ़ संकल्प था । जैसे ही दादा के दरबार में पहुँचे, आदेश्वर प्रभु के दर्शन करते ही थकावट दूर हो गई, दर्शन से हृदय गद्गद् हो उठा । अत्यानंद से हृदय भर गया । दिन धन्य हो गया । जीवन कृतकृत्य हो गया ।

तभी पूजा की गति में कहा है-

गिरिवर दर्शन विरला पावे,

पूरव संचित कर्म खपावे गिरिवर....

दादा के दर्शन तो ठीक पर दादा के शिखर का मोर बनकर टहुका करने का सद्भाग्य मिले ऐसी चाह कवि ने स्तवन की पंक्तियों में की हैं ।

विमलगिरि क्युं न भये हम मोर ?

दादा के दर्शन करने के बाद गुजरात के महामंत्री वस्तुपाल के मुख से भी ऐसे ही शब्द नीकले थी कि-हे प्रभु, तेरे दरबार में किसी कोने में, छोटे से घोंसले में पक्षी बनाकर स्थान दें तो भी मैं अपने आपको भाग्यशाली समझूँगा ।

इस तीर्थ का वर्णन करते हुए स्वयं प्रभु ने गौतम स्वामी से कहा था कि तीर्थ की महिमा मैं केवलज्ञान से जान सकता हूँ... परंतु उसका शब्दों से परिपूर्ण वर्णन करना संभव नहीं ।

जैनेतर दर्शन की मान्यता के अनुसार स्वर्ग की प्राप्ति के लिए कोई गंगा में जल समाधि लेता है-कोई प्रयाग में कोई काशी में या कोई मथुरा में जल समाधि लेता है । इसका कारण क्या है ? जवाब है भूमि की पवित्रता ।

जैन धर्म में जन्म लेनेवाले प्रत्येक धर्मात्मा की इच्छा होती है कि जन्म भले हो दुनिया के किसी भी कोने में हो पर मृत्यु तो सिद्धगिरि पर आनी चाहिए क्योंकि वहाँ परमाणुओं की पावनता है अतः समाधि और सद्गति सहज हो जाती है ।

इस तीर्थ के प्रभाव से व्यसनियों के व्यसन शीघ्रता से छूट जाते हैं । 60 वर्ष से रोज 25 बीडी, दस कप चाय पीनेवाले एक भाई को शत्रुंजय पहाड़ चढ़ते-चढ़ते विचार आया कि अनंतानंत आत्मा यहाँ मृत्यु पाकर अमर बन गए हैं तो मेरी भी यहाँ मृत्यु हो जाय तो कितना अच्छा होगा । ऐसे विचार आते ही शत्रुंजय के ध्यान में उनका हृदय घड़कना बंद हो गया, आयुष्य के श्वासोच्छवास भोग लिए गए । और आयुष्य सचमुच में पूरा हो गया । कैसी भाव की उत्कंठा ! कैसी मनचाही श्रेष्ठ मृत्यु !

तपागच्छ के अधिष्ठायक देव माणिभद्रवीर को अधिष्ठायक बनानेवाला यह सिद्धगिरि ही है ना ?

माणेकचंद शेठ शत्रुंजय के ध्यान में लीन बन गए उसी के प्रभाव से वे तपागच्छ यक्षाधिराज माणिभद्रवीर बने ।

यह तीर्थ असंख्य काल से शाश्वत ही है । असंख्य कालतक शाश्वत ही रहेगा । उस बीच तीर्थ के असंख्य उद्धार हुए और होंगे । इस अवसर्पिणी काल में इस महातीर्थ का सोलह बार उद्धार हुआ ऐसा उल्लेख मिलता है । उनमें से बारह उद्धार तीसरे-चौथे आरे में हुए हैं और अंतिम चार उद्धार पाँचवे आरे में हुआ है । ये हैं शत्रुंजय के सोलह उद्धार करनेवाले पुण्यवानों की नामावली 1) भरत महाराज 2) दंडवीय, 3) ईशानेन्द्र, 4) महेन्द्र, 5) ब्रह्मलोकेन्द्र, 6) चमरेन्द्र, सागरचक्रवर्ती, 7) व्यंतरेन्द्र, 8) चंद्रयशा,9) राजा चकायुध, 10) राम-लक्ष्मणजी, 11) पाँच पांडव, 13) तेरहवाँ उद्धारक सं. 108 में जावशा ने कराया 14) चौदहवाँ उद्धार सं. 1273 में बाहडमंत्रीने कराया, उस वक्त 2 करोड, 17 लाख, रु. का सद्व्यय हुआ था। 15) पंद्रहवाँ उद्धार सं. 1371 में समराशाने कराया । 16) सोलहवाँ और अंतिम उद्धार सं. 1587 में चितौड़ (मेवाड़) निवासी समरशाह ने कराया है । अभी वर्तमान में जो मूलनायक आदिश्वर परमात्मा विराजमान है वह करमाशा द्वारा स्थापित है ।

तत्पश्चात् सत्रहवाँ उद्धार पाँचवे आरे के अंत में दुप्पसहसूरि के काल में उनके उपदेश से विमलवाहन राजा कराएँगे । ऐसा शास्त्रवचन उपलब्ध है ।

इस गिरिराज के 21, 108 और 1000 यथार्थ नाम हैं । वीरविजय महाराज 99 प्रकारी पूजा की पहली ढाल में ही कहा है ।

हजार नामों को करते हैं नमन

श्री सिद्धाचल के 108 दोहे में इस तीर्थ की यशोगाथा का अद्भुत वर्णन किया गया है ।

पुंडरीक स्वामी जैसी महान विभूति ने इस गिरि की महिमा का वर्णन सवालाख श्लोकों की रचना करके किया है । ज्ञानविमलसूरि ने इस तीर्थ के गुणगान में 1100 स्तवन की रचना की है ।

कहा जाता है कि इस तीर्थस्थान में नमस्कार महामंत्र का या आदिश्वर परमात्मा का एक लाख जप करें तो नरक-तिर्यंच गति से हमेशा के लिए छुटकारा मिल जाता है । स्तवन में तो यहाँ तक कहा है कि-"श्री शत्रुंजय सिद्धक्षेत्र दीठे दुर्गति वारे" दादा के दर्शन मात्र से दुर्गति के द्वार बंद हो जाते हैं ।

सिद्धगिरि के सिवा अन्यत्र जो तपत्याग की साधना की जाती है, वही साधना अगर इस पावन भूमि में की जाय तो दो महान लाभ मिलते हैं । एक तो कष्टसाध्य ऐसी साधना सुसाध्य बन जाती है । दूसरा लाभ क्षेत्र की साधना जन्य फल में अनंतगुणा वृद्धि होती है । जिसका फल शास्त्र में बताया भी है ।

नवकारसी का फल छठ्ठ-	एकासणा का फल 5 उपवास ।
पोरसी का फल अठ्ठम-	आयंबिल का फल 15 उपवास ।
परिमूढ का फल 4 उपवास-	एक उपवास का फल 30 उपवास ।

इतना ही नहीं पर दुनिया के अन्य महान तीर्थों से इस तीर्थ की यात्रा का फल भी सबसे श्रेष्ठ बताया है । इसका भी शास्त्राधार है ।

- नंदीश्वर द्विप के तीर्थ की यात्रा से कुंडलद्विप की यात्रा का फल दुगुना है ।
- कुंडलद्विप की यात्रा से घातकी खंड के चैत्यों को जुहार करने का फल 6 गुना अधिक है ।
- घातकी खंड की यात्रा से पुष्परार्ध द्विप के चैत्यदर्शन का फल 36 गुना अधिक है ।
- पुष्करार्धद्विप की यात्रा से मेरुपर्वत की यात्रा का फल 100 गुना अधिक है ।
- मेरुपर्वत की यात्रा से समेतशिखरजी यात्रा का फल 1000 गुना अधिक है ।
- समेतशिखरजी की यात्रा से अष्टापदजी की यात्रा काल फल लाख गुना अधिक है ।
- अष्टापद की यात्रा से सिद्धचल की यात्रा-स्पर्शना का फल करोड गुना अधिक है ।

इसका कारण यह है कि यहाँ की भूमि के कण-कण में अनंत सिद्धात्माओं के पवित्र चरण स्पर्श से स्पंदित है । इस गिरिराज की पाँच तलाहटियाँ हैं ।

1) वडनगर 2) वलभीपुर 3) घेटीपाग(आदपुर)4) जयतलेटी 5) कंकुबाई-धर्मशाला के पास ।

सोरठदेश शणगार इस गिरिराज पर कुल नौ टूँक हैं । उसमें 124 भव्य मंदिर, 730 देरी, 11,474 जिनप्रतिमाएँ और 8961 चरण हैं ।

केवल दादा की टूंक में ही 65 मंदिर, 300 देरियाँ और 5700 प्रतिमाएँ हैं । जिस काल में कॉम्प्युटर नहीं थे । हाई-टेक्नोलॉजी की मशीनें नहीं थी ।

केवल मानवीय प्रयत्न द्वारा तीन कि.मी. ऊँचाई पर पत्थर चढाकर, ऐसे भव्यातिभव्य जिनालयों का सर्जन करना, और वह भी एक दो नहीं बल्कि सैंकडों की संख्या में यह कोई सामान्य बात नहीं है । स्पुटनिक युग में फिरभी संभव हो पर पत्थर-युग में पूरे विश्व को आश्चर्यान्वित कर दे ऐसा कलात्मक सर्जन करना सचमुच अनोखी बात है ।

समुद्र तल से गिने तो 1077 फिट की ऊँचाई पर दादा का दरबार है । 500 वर्ष पूर्व ऐसे ऊँचे पहाड़ पर अगाध खाईयों में समतल भूमि बनाना और इतनी बडी प्रतिमा और संगमरमर के पत्थरों को उपर चढ़ाना तो अशक्य लगता है । कहा जाता है कि मोतीशा की टूंक बनाने के लिए नीचे जमीन में से खाई भरनी पडी थी । पत्थर चढ़ाने के लिए बड़ी-बड़ी मोटी रस्सी का उपयोग किया गया था जिसकी कीमत 50 हजार रु. थी ।

इस गिरिराज को शास्त्रो में "औषधि-गर्भ" के रूपमें वर्णित किया गया है । शत्रुंजय माहात्म्य नामक ग्रंथ में लिखा है कि इस पहाड़ पर सोने की खानें हैं । रसकूप, जडी-बुट्टियाँ तथा गुफाएँ हैं ।

वहाँ एक सूर्यावर्त (सूरजकुंड) नाम का कुंड है । जिसका जल पीने से सभी प्रकार के रोग दूर हो जाते हैं । विविध जंगल और अलग अलग प्रकार के औषधि-वृक्षों का भंडार है ।

वर्षाकाल के चार महीने यहाँ यात्रा करने का पारंपारिक प्रतिबंध है । इसके अलावा समय-सयम पर यात्री पर्वत की तीन गाऊकी, छ गाऊकी और बारह गाऊ की यात्रा करते देखे जाते हैं ।

लगभग 73 धर्मशालाओं से शोभित यह पर्वतराज है । इस तीर्थ के आसपास भी डेम-कदंबगिरि, महुवा, दाठा, तलाजा, घोघा इ. तीर्थ स्थान हैं ।

तलहटी से उपर चढ़ते समय क्रमशः ये यात्रा स्थान हैं :

जय तलेटी, अजितनाथजी के चरण, गौतम स्वामीजी के चरण (पगला) आदिनाथ के चरण, शांतिनाथजी के चरण, धर्म-कुंथु-नेमनाथ के चरण, सरस्वती माताजी का मंदिर, बाबु का मंदिर, खोना का मंदिर, समवसरण मंदिर, भरतचक्रवर्ती के चरण, इच्छाकुंड, नेमनाथ-वरदत्ता गणधर के चरण, कुमारकुंड, "हिंगळाजनो हडो", कलिकुंड पार्श्वनाथ के चरण, चार शाश्वत 'जिन' के चरण, श्री पूज्य की

टूंक, पद्मावती माता, द्राविड वारिखिल्ल, अईमुत्ता, नारदजी के चरण, हीराबाई का कुंड, भुखणदास का कुंड, राम-भरत, थावच्चापुत्र, शुक्राचार्य की पाँच मूर्तियाँ, सुकोशल मुनि के चरण, नमि-विनमि के चरण, रामपोल, विमलवसहि (दादा का कुंड), पुण्य पाप की खिडकी, सूरज कुंड, हाथीपोल, रायणवृक्ष, अजितनाथ-शांतिनाथ की देरी, चंदन तलावडी, भाडवानो डुंगर, सिद्धवड, अंगारशा के परिका स्थान, नौटूंक, सहस्त्र कुट, 1452 गणधरों के चरण, नेमनाथ के मंदिर के छत पर संगमरमर में खुदवाया नेमनाथ भगवान के विवाह समय का मंगल कलश इ. बहुत ही अद्‌भुत है । बालाभाई की टूंक के पास अडबदजी दादा की 18 फीट ऊँची और साडे चौदह फीट चौड़ी प्रतिमा सचमुच में बहुत ही दर्शनीय है । छीपवासी टूंक में एक गुंबज का कलात्मक दृश्य बहुत ही नयनरम्य है ।

नौ टूंक के नाम

चौमुखजी की टूंक, मोतीशा की टूंक, बालाभाई की टूंक, प्रेमाभाई की टूंक, हेमाभाई की टूंक, उजमफई (बुआ) की टूंक, साकरसी की टूंक, छीपावसी टूंक, सवासोमाकी टूंक, एक-एक टूंक के निर्माण का भव्य इतिहास है । यहाँ विस्तार से लिखना संभव नहीं । ऐसे प्रगटप्रभावी, पुनित-पावन मुक्तिपुरी की सीढ़ियों के समान, अनंत मुक्तात्माओं का आश्रयस्थान श्री शत्रुंजय गिरिराज के चरणों में भावभीनी वंदना.....

अंत में -

सिद्धाचल समरुं सदा सोरठ देश मोजार,
मनुष्य जन्म पामी करी वंदु वार हजार....

2. उज्जैन तीर्थ (श्री अवंती पार्श्वनाथ भगवान)

इतिहास प्रसिद्ध उज्जैन शहर के मुख्य रेल्वे स्टेशन से यह तीर्थ 1.6 कि.मी. दूर है । उज्जैन शहर की क्षिप्रा नदी के पास यह तीर्थ है । मूलनायक श्री अवंती पार्श्वनाथ भगवान की श्याम वर्ण की प्रतिमा है । उज्जैन का प्राचीन नाम है अवंती । इसी नगरी ने और तीर्थ ने समय परिवर्तन के उलटफेर देखे हैं । वैसे पतन और उत्थान की प्रक्रिया सतत चलती रहती होने के कारण इस जिनालय में प्राचीन कला कुछ कम मात्रा में दिखाई देती है । परंतु श्री अवंती पार्श्वनाथ भगवान की प्राचीन

प्रतिमा अत्यंत सौम्य और प्रभावशाली है । जैन इतिहास में चंडप्रद्योत, सम्प्रति, विक्रमादित्य जैसे अनेक प्रभावशाली राजाओं ने इस नगरी की शान बढाई है । शासन प्रभावक आचार्य चंद्ररुद्र, आर्यरक्षितसूरि, श्री चंद्रगुप्त मौर्य, आर्य आषाढ इ.ने यहाँ रहकर धर्म का प्रभाव फैलाया है । आ. श्री सिद्धसेन दिवाकरसूरि ने कल्याणमंदिर स्तोत्र की रचना की । जिसके प्रभाव से मंदिर में जो ज्योतिर्मय शिवलिंग था, उसमें से पार्श्वनाथ प्रभु की मनोहर मूर्ति प्रगट हुई थी । सातवी सदी में श्री मानतुंगसूरि ने यहीं पर भक्तामर स्तोत्र की रचना द्वारा चमत्कार बताया और 11 वी सदी में श्री शांतिसूरिजी ने भोज के दरबार के 84 वादियों को चर्चा सत्र में जीतकर अपूर्व सम्मान प्राप्त किया । वीरनिर्वाण संवत 250 में इस तीर्थ का श्री महाकाल आर्य सुहस्तिसूरिजी के उपदेश से अपने पिता के स्मरणार्थ निर्माण किया । इसके बाद समय के प्रवाह के साथ कई तब्दिलियाँ आयीं । परंतु आचार्य भगवंत ने अपनी आध्यात्मिक शक्ति द्वारा समय-समय पर तीर्थ की महिमा बढ़ाई है । आज इस मंदिर के अलावा अन्य बाईस मंदिर यहाँ देखने को मिलते हैं ।

3. श्री मांडवगढ तीर्थ (सुपार्श्वनाथ भगवान)

इन्दौर रेल्वे स्टेशन से 88 कि.मी. दूर और धार गाँव से 33 कि.मी. दूर विंध्याचल पर्वत के ऊँचे शिखर पर मांडव दुर्ग के विशाल कोट के अंदर यह तीर्थ है । वह मांडु नाम से प्रसिद्ध है । यह प्राचीन स्थान है, यहाँ प्राचीन कला के असंख्य अवशेष मिलते हैं । मूलनायक श्रीसुपार्श्वनाथ भगवान की श्वेत प्रतिमा 14 वी सदी से भी अधिक प्राचीन है । ऐसा कहा जाता है कि एक समय था जब यहाँ 700 जिनालय थे । तथा छ लाख से अधिक जैनों की बस्ती थी । यहाँ के लोगों में साधर्मिक वात्सल्य भाव इतना अधिक था कि यहाँ कोई भी जैन नया रहने के लिए आता तो उसे प्रत्येक जैन घर में से एक सुवर्ण मुद्रा और एक ईंट दी जाती थी । इ.स. 13वी सदी से 17वी सदी के बीच मांडवगढ में अनेक प्रभावशाली जैनमंत्री और श्रावक हो गये । मंत्री पेथडशाह, झांझणशाह, पूंजराज, मुंजराज, उपमंत्री मंडन, गोपाल, खजानची संग्राम सोनी, दीवान जीवन, श्रावक जावडशाह इ.ने अपनी स्वयं की अमाप संपत्ति का उपयोग कर अनेक मंदिर बँधवाए थे । कितने ही यात्रासंघ निकाले थे । इस प्रकार जैन धर्म की असीम प्रतिष्ठा वृद्धिगत

की थी । जब धर्मघोषसूरिजी का आगमन इस नगरी में हुआ तब पेथडशाह ने इस नगरी को बहुत भव्य रूप में सजाया था । झांझणशाह ने शत्रुंजय के लिए यात्रा संघ निकाला, मंडन उपमंत्रीने ग्रंथो की रचना की, श्री संग्राम सोनी ने सुवर्णाक्षर में आगम लिखवाये और जावडशाह की धार्मिकता और उदारता की इतिहास गाथा मांडवगढ तीर्थ में आज भी लोगों के मुँह से सुनी जाती है । इसी कोट के अंदर शांतिनाथ भगवान का छोटे आकार में रमणीय मंदिर है। इसकी भूमिति की रचना सर्वोत्कृष्ट है ।

4. श्री अयोध्या तीर्थ (श्री अजितनाथ भगवान)

अयोध्या शहर के कटरा मुहल्ले के इस तीर्थ में श्री अजितनाथ भगवान की ताम्र वर्ण की लगभग 30 से.मी. ऊँची प्रतिमा है । जैन और हिंदुओं का यह पावन तीर्थस्थान है । यहाँ पाँच तीर्थंकरो के 19 कल्याणक हुए हैं । इस युग के प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव भ. की यह जन्मभूमि है । इस नगरी के शास्त्रों में अनेक नाम है जैसे इक्ष्वाकु भूमि, कोशल, विनिता, अवध्या, रामपुरी और साकेतपुरी । इस पावन भूमि पर आदिश्वर भगवान का च्यवन, जन्म, दीक्षा और अजितनाथ भगवान, अभिनंदन भगवान, श्री सुमतिनाथ भगवान, श्री अनंतनाथ भगवान के च्यवन, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान कल्याणक हुए हैं । इसी प्रकार राजा ऋषभदेव भगवानने जगत को सामाजिक, राजकीय और व्यावहारिक व्यवस्था का मार्ग इसी भूमि पर बताया है । भरत क्षेत्र के प्रथम चक्रवर्ती भरत ने अयोध्या को अपने साम्राज्य का केन्द्र बनाया था । भगवान महावीर और भगवान बुद्ध के चरणरज से यह भूमि पवित्र बनी है । अयोध्या का रामराज्य तो जगविख्यात है । महान प्रभावक आ. श्री पादलिप्तसूरि म. का यह जन्मस्थान है । चंद्रावतंस राजा को इसी भूमि पर केवलज्ञान प्राप्त हुआ था । मूलनायक श्री अजितनाथ भगवान का मंदिर नये स्वरूप में बनाया गया । शिखर और भूमिगृह से बहुत शोभित हो रहा है । सामने ही समवसरण के आकार की देरी में चौमुखजी विराजमान है । कोने की देरी में से पादुका और प्रतिकृति लाकर यहाँ और मूल मंदिर में विराजित है । यहाँ मूलनायक श्री अजितनाथ भगवान के मंदिर में वि.सं. 1671 का प्राचीन लेख लिखा हुआ है ।

5. श्री सौरपुरी तीर्थ (श्री नेमिनाथ भगवान)

आगरा से 75 कि.मी. और शिकोहाबाद से 25 कि.मी. दूर श्री सौरपुरी तीर्थ है । जिसका उल्लेख प्राचीन आगमग्रंथ समवायांग, उत्तराध्यनन सूत्र में मिलता है । इस तीर्थ का गौरवभरा वर्णन आगमों में वर्णित है । बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ भगवान का च्यवन कल्याणक और जन्म कल्याण की यह पवित्र भूमि है । यमुना नदी के किनारे बसा हुआ, बटेस्वरकी पहाडी रास्ते से 1.5 कि.मी. दूर इस तीर्थ में मूलनायक श्री नेमिनाथ भगवान की श्याम वर्ण की लगभग 75 से.मी. ऊँची पद्मासनस्थ प्रतिमा है । ऐसा कहा जाता है कि चरम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी का यहाँ पदार्पण हुआ था । इस पवित्र भूमि पर श्री प्रद्युम्नसूरि, श्री बप्पभट्टसूरिजी, श्री विमलचंद्रसूरि, श्री समेतशिखर की यात्रा के लिए जाते समय सौरीपुर में पधारे थे । अकबर-प्रतिबोधक श्री हिरविजयसूरि वि. सं. 1940 में सौरीपुर तीर्थयात्रा के लिए पधारे थे । उन्होंने संघवी सोहिल द्वारा बनवाई मूर्ति की अंजनशलाका-प्रतिष्ठा की थी, उन्होंने श्री नेमिनाथ भगवान की चरण-पादुका भी वहाँ स्थापित की थी ।

प्राचीन काल की यह विराट नगरी थी । इसके और भी नाम हैं - सौरीयपुर और सूर्यपुर । इस तीर्थ का अंतिम उद्धार और प्रतिष्ठा वि.सं. 1981 में काशीवाले पू.आ. श्री विजयधर्मसूरिजी के शिष्य पू. श्री विद्याविजयजी तथा प. पू. श्री जयंतविजयजी आदि मुनिवरों ने की थी । इस तीर्थ के मूलनायक भगवान नेमिनाथ की श्याम वर्ण की प्रतिमा अत्यंत दर्शनीय है । इस शहर के ध्वंसावशेष में से प्राचीन काल की संपन्नता की जानकारी मिलती है ।

6. हस्तिनापुर तीर्थ (श्री शांतिनाथ भगवान)

हस्तिनापुर बहुत प्राचीन शहर है । हस्तिनापुर तीर्थ युगादिदेव श्री आदिश्वर भगवान के समय जितना प्राचीन है । यहाँ मूलनायक श्री शांतिनाथ भगवान की गुलाबी वर्ण की लगभग 90 से.मी. ऊँचाई वाली, पद्मासनस्थ प्रतिमा है । श्री शांतिनाथ भगवान, श्री कुंथुनाथ भगवान और श्री अरनाथ भगवान के च्यवन, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान ऐसे बारह कल्याणक होने का महाभाग्य इस भूमि को प्राप्त हुआ है । भगवान मल्लिनाथ और श्री महावीर स्वामीजी की चरणरज से भी

इस नगरी को पावन किया है । श्री आदिनाथ भगवान को श्री श्रेयांसकुमार ने इसी नगरी में इक्षुरस का पारणा करवाया था । वह दिन आज भी अक्षयतृतीया के नाम से प्रसिद्ध है । भगवान महावीर के बाद अनेक प्रकांड विद्ववान आचार्य और भाविक संघो ने इस तीर्थ की यात्रा की है । इस प्रकार यह भूमि महान आत्माओं के जन्म और पदार्पण से पवित्र बनी हुई है । यह स्थान बहुत प्राचीन है अतः यहाँ प्राचीन प्रतिमा, सिक्के, शिलालेख जमीन के अंदर से प्राप्त होते हैं । मूलनायक की प्रतिमा की प्रतिष्ठा समय-सयम होती रही है । इसका अंतिम जीर्णोद्धार वि.सं. 2021 मार्गशीर्ष सुदी 10 के दिन हुआ था । यहाँ हर वर्ष कार्तिक सुदी पूनम और वैशाख सुदी तीज के दिन मेला लगता है । यहाँ से एक माईल दूर टेकरी पर श्री शांतिनाथ, श्री कुंथुनाथ और श्री अरनाथ भ. की चरणपादुका है । यहाँ अलग-अलग स्थानों पर श्वेताम्बर और दिगम्बर की देरियाँ भी हैं । एक प्राचीन देरी में श्री आदिनाथ प्रभु के चरण हैं । इस भूमि पर श्री आदिनाथ प्रभु ने पारणा किया था अतः अक्षय्यतृतीया का वरघोडा यहाँ आकर रुकता है ।

6. शांत सुधारस (मैत्री इत्यादि भावना)

तीर्थंकर भगवंतों ने मैत्री वगेरे चार सुंदर भावनाएँ धर्मध्यान के अनुसंधान के लिए दर्शाई हैं ।।1 ।।

मैत्री-प्रमोद-करुणा और माध्यस्थ चार भावनाएँ धर्मध्यान की तैयारी के लिए नींव का पत्थर है, क्योंकि ये भावनाएँ धर्मध्यान का रसायण हैं जो इसमें घूंट-घूंट कर भरा हुआ है ।।2 ।।

1. मैत्री-भावना

मैत्री यानी दूसरों के हित का विचार, चिंतन । प्रमोद भावना यानी गुणों के प्रति आदर, अहोभाव, करुणा यानी दुःखी जीवों के दुःख दूर करने की भावना, उपेक्षा (माध्यस्थ) भावना यानी दुष्ट बुद्धिवालों के प्रति समभाव ।।3 ।।

हे आत्मा ! तुम चारों ओर तुम्हारी मैत्री को फैला दो ! जगत में कभी किसी को अपना शत्रु नहीं मानना । कितने दिन तुम्हें यहाँ जीवन बिताना है ? तो फिर क्यों द्वेषबुद्धि बढ़ाकर संतप्त होते हो ? ।।1 ।।

संसार सागर के सफर में सभी प्राणियों के साथ अनंत बार बंधुता के संबंध जोड़े हैं । इसीलिए सभी जीव तुम्हारे बंधु हैं । कोई शत्रु नहीं है। ऐसा ही सदा विचार करना ।।2 ।।

सभी जीवों के साथ तुम्हारा अनेक बार कभी माता, पिता, भाई, बहन, चाचा, पुत्र, पुत्री, पत्नी, पुत्रवधु इ. संबंध थे । इन सभी जीवों की दुनिया, तुम्हारा एक कुटुम्ब ही है । तो फिर तुम्हारा कोई शत्रु कैसे होगा ? ऐसी प्रतीति रखना ।।3 ।।

एकेन्द्रिय जीव भी पंचेन्द्रियपन पाकर, अच्छी तरह धर्म की आराधना करके भवभ्रमण के भय से कब मुक्त बनेंगे । (ऐसा विचार करना) ।।4 ।।

प्राणियों के मन-वचन-काया को अशुभ भाव में खींचनेवाली राग-द्वेष व्याधियाँ शांत बने । सभी प्राणी उदासीन भाव (सुख-दुःख से उपर उठकर) का रसास्वादन करें । सर्वत्र सभी जीव सुखी बने ।।5 ।।

विनय !

कर्म की विचित्रता का शिकार बनकर चारों गतियों में तीन लोक में भ्रमण करनेवाले जीवों के प्रति मित्रता का चिंतन करे ।।1 ।।

सभी प्राणी तुम्हारे मित्र हैं । दुनिया में कोई शत्रु नहीं है । नाहक क्लेश-द्वेष के वश होकर मन को दूषित मत करना ! दूषित हुआ मन तुम्हारे ही सत्कार्यों पर पानी फेर देगा ! ।।4।।

मान लो, कोई व्यक्ति अपने कर्मों के कारण परवश बनकर तुम पर क्रोधित हो, तो तुम क्यों क्रोध के आधीन बनकर क्रोधित होते हो ? ।।3।।

इस दुनिया में क्लेश-द्वेष करना भले मनुष्य को शोभा नहीं देता ! तुम तो समता रस में विचरनेवाले हो । क्लेश को त्याग दो । गुणों की खान से समृद्ध बना हुआ ऐ चेतन ! तुम मान-सरोवर के हंस की तरह विवेक बुद्धिवाला बनना ।।4।।

शत्रु के प्रति वैर-विरोध भाव छोडकर समभाव रखना और सुखी बनना ! यही एक शाश्वत सुख की ओर जाने का मार्ग है ।।5।।

एक बार इस समतारस का आस्वादन कर लिया तो फिर उसी रस में डूबे रहने की लगन लग जाती है ।।6।।

समझ में नहीं आता कि प्राणी अशाश्वत सुख धारा में डूबकर क्यों पापकर्म की राशी खडी करता है ? क्यों तीर्थंकर के वचनों में रुचि नहीं बढ़ाता ? ।।7।।

शुद्ध आत्मा ! तुम परमात्म भाव में डूबे रहो, विनय युक्त समता रस का पान करके सारे जीव आनंदित बनो ।।8।।

2. प्रमोद भावना

वीतराग परमात्मा को धन्य-धन्य है ।

क्षपक श्रेणी के मार्ग से गति करके जिन्हों ने कर्मों के दलों को धो डाला है । तीन लोक में गंधहस्ती (श्रेष्ठ हाथी) समान है । जिनमें सहज भाव से, ज्ञान से, वैराग्य प्रभाव प्रगट हुआ है, जो पूर्णिमा के पूर्णचंद्र की कला जैसा निर्मल है, ध्यान-धारा से आत्मविशुद्धि द्वारा आरोहण कर, सैंकडो सुकृत्यों को अपनाकर अरिहंत पद की श्रेष्ठता को प्राप्त कर मुक्ति के निकट पहुँचे हैं ।।1।।

कर्मक्षय कर देने के बाद वीतराग देव के अनेक गुणों के सहारे निर्मल आत्मस्वभाव के माध्यम से वारंवार उनका स्तवन करके हमारे आठ उच्चार स्थान को पवित्र करते हैं । परमात्मा के स्तोत्र का गुणगान करनेवाली जिव्हा ही उस रस की अनुभूति कर सकती है । और लोग जो अंटसंट बातों में, निरर्थक गपशप में इस

जिव्हा का दुरुपयोग करते हैं वह जिव्हा रसज्ञ हो ही नहीं सकती, ऐसा मेरा अपना मानना है ।।2।।

पर्वत शिखर पर... एकांत वनप्रदेश में, गुफाओं में, बीहड़ प्रदेशों में रहकर जो धर्मध्यान में लीन, समता-रस में तृप्त रहता है तथा पंद्रह दिन के या मासखमण के उपवास करनेवाले, साधु भी धन्य हैं ! और भी जो ज्ञानवान श्रुतप्रज्ञायुक्त, धर्मोपदेश देनेवाले, शांत, जितेन्द्रिय जगत में जिनेश्वर के शासन की शान बढ़ानेवाले साधु भी धन्य हैं ।।3।।

जो गृहस्थ दान करता है, शीलव्रत धारण करता है, तप करता है, उच्च भावना भाता है, ज्ञानयुक्त, श्रद्धापूर्वक चार प्रकार के धर्म की आराधना करता है वे भी धन्य हैं । साध्वीजी तथा श्राविका जो निर्मल ज्ञानयुक्त शील की आराधना करते हैं, पालन करते हैं वे भी धन्य हैं । इन सभी की स्तवना भाग्यशाली व्यक्ति विनम्र भाव से हररोज करता है ।।4।।

मिथ्यादृष्टि (विधर्मीलोग) में भी उपकार, दान इ. मुख्य गुण होते हैं । संतोष, सत्यता इ. गुण भी होते हैं, उदारता, विनय इन सब मार्गानुसारी गुणों की भी अनुमोदना करते हैं ।।5।।

हे जिव्हे ! तुम सदा प्रसन्न रहकर भाग्यशाली चारित्र संपन्न जीवों की सदा प्रशंसा करना । वैसे ही मेरे कान की जो सुनने की शक्ति है वह तब सार्थक होगी जब मैं दूसरों का यश सुनकर आनंद का अनुभव करुं । इस संसार में इस प्रकार के भावों की जागृति होने से ही जन्म की सार्थकता होगी ।।6।।

दूसरों के गुणों को देखकर आनंदित होकर जिनकी प्रज्ञा समतासागर में लीन रहती है, तब मन की प्रसन्नता शोभा देती है । तब सारे अच्छे गुण और निर्मल बनते हैं ।

विनय !

तुम सद्‌गुणों का अत्यंत आदरभाव करना । ईर्षाभाव को समूल नष्ट कर देना । जिन्हें अपने सद्‌कर्मों के फलस्वरूप जो सुख-साधन-संपन्नता प्राप्त हुई, उनको देखकर आनंद का अनुभव करना ।।1।।

कितना अच्छा है, कि कोई भाग्यशाली दान देता है, दुनिया में उसका सम्मान होता है ! दूसरों के उत्कृष्ट भाग्य को देखकर तुम ऐसा विचार क्यों नहीं करते कि मुझे उनके सत्कृत्य में भाग लेने का मौका मिले ।।2।।

जिन का मन विकार रहित है ऐसे महापुरुष इस जगत् में रहकर परोपकार करते हैं, ऐसे औचित्यगुणवाले महान पुरुषों के नाम को हम हमेशा स्मरण करते हैं ।

एक सहनशीलता गुण ऐसा गुण है कि जिसकी तुलना किसी और गुण के साथ हो ही नहीं सकती । मुक्ति प्राप्त कराने में परम साधन है यह गुण । तीर्थंकर परमात्मा में यही गुण सर्वश्रेष्ठ रूप में होता है । क्षमा गुण से क्रोध नष्ट होता है और कर्मों की बढ़ती श्रृंखला घटती जाती है । ।।4।।

कितने ही गृहस्थ परस्त्री का त्याग कर श्रेष्ठ शीलव्रत का पालन करते हैं । उनकी यशोगाथा आज भी संसार में गाई जाती है ।।5।।

जो स्त्री अपने दोनों कुल का नाम अपने सद्कार्य से सदाचरण से, रोशन करती है वह भी भाग्यवान है ।

तत्त्व के जानकार महापुरुष, सात्त्विक योगी पुरुष और सज्जनों में श्रेष्ठ, ज्ञान देने में कुशल ऐसे महापुरुषों ने जगत को दीपाया है । ऐसों का नाम स्मरण भी शुभ योग है ।।5।।

इस तरह दूसरों के गुणों का स्मरण-कीर्तन कर उसमें आनंद का अनुभव करना, उन गुणों का चिंतन करना इस तरह अपना जीवन सफल बनाना ! सद्गुण यह निधि है उनका गुणगान कर शांत सुधारस का पान तू कर ।।8।।

3. करुणा भावना

इस जगत में लोग अपनी आवश्यकता पूर्ति करने में इतने व्यग्र रहते हैं फिर मन स्थिर रहे ही कैसे ? खाना-पीना, कपडे, गहने, विवाह, संतति एक के हजार प्रश्न आए दिन मुँह बाये खडे रहते हैं । इस दलदल से व्यक्ति बाहर निकल ही नहीं पाता इसी में उलझा रहता है ।

अनेक प्रकार के उलट-फेर कर आदमी धन-संपत्ति इकट्ठा करता है, और जन्मोजन्म की आदतानुसार उसे ही शाश्वत समझता है । उसी में हृदय से जुड़ जाता है । परंतु एक दिन रोग, बुढ़ापा या मृत्यु आ घेरती है और सब कुछ यहाँ धरा रह जाता है ।।2।।

कुछ लोग स्पर्धा में ही डूबे रहते हैं । कुछ क्रोध में जलकर, मत्सर करते हैं । कुछ तो धन, स्त्री, जमीन इत्यादि के लिए युद्ध तक करने पर उतर जाते हैं । झगडे

करते हैं । कुछ संपत्ति प्राप्त करने के लिए देश-विदेश में जाते हैं और दु:खी हो जाते हैं । पूरा विश्व ही मानो उद्वेग-आपत्ति में घिरा हुआ है । क्या करें ? क्या कहें ? ।।3।।

आदमी खुद अपने हाथों गढा खोदता है, खुद ही उसमें गिरता है इतना कि वापस बाहर निकलना चाहे तो भी निकल नहीं सकता और गहराई में डूबता जाता है ।।4।।

कुछ महानुभाव तो नास्तिकता का ऐसा स्वाँग भरते हैं जो प्रमाद का पोषण ही करते है । दोषों, पापों में इतना डूब जाते है कि निगोद इत्यादि का अपरंपार दु:ख भूगतते हैं ।।5।।

जो प्राणी अपने हितकारी उपदेश को सुनता ही नहीं और धर्म को अंश मात्र भी मानने को तैयार नहीं, उसकी दु:खी अवस्था दूर हो भी तो कैसे ? ।।6।।

दूसरों के दु:ख दूर करने की चिंता जो आदमी बहुत करता है, वही सच्चा, श्रेष्ठ सुख भविष्य में प्राप्त करता है ।

सज्जनो !

सच्चे हृदय से तुम भगवान की प्रार्थना करो ! क्यों कि परमात्मा कृपावंत है, करुणाशील है शरण आये हुए पर नि:स्वार्थ भाव से करुणा बरसाते हैं ।।1।।

मन को थोडा स्थिर बनाकर जिनागम के तथ्य का पान करो । गलत मार्ग पर चलोगे तो भटक जाओगे । निरर्थक विचारों का त्याग कर दो।।2।।

हित-अहित का जिन्हें भान नहीं ऐसे अविवेकी गुरु का संग छोड देना चाहिए क्योंकि वे ओछी बुद्धिवालों को भरमा देते हैं । सद्‌गुरु के वचनों का ही जीवन पर परिणाम होता है, एक बार भी सद्‌गुरु के वचन का पान करें तो हृदय आनंद से उछलेगा ही ।।3।।

गलत मार्ग या विपरीत मान्यता के अंधकार से जिसकी आँखें बंद है, ऐसो को तुम सच्ची राह दिखा सकते हो ? पानी को मथने से क्या मिलेगा ? ।।4।।

मन को बिल्कुल् निरंकुश छोड दोगे तो वह आतंक ही फैलायेगा । इसी बिना लगाम के मनको अगर जो आत्माराम के उपवन में छोड दो तो नि:शंशय ही वह आनंद पा सकता है ।।5।।

अनंत-अनंत जन्मों से आश्रव, विकथा, कामेच्छाओं में रत रहनेवाले इस आत्मा को उस कूडे-करकट से हटाकर, संवर और आत्मानुशान में जोड़कर अपना मित्र बना लो । यही रहस्य की बात है उसे समझो ।।6।।

संसाररूपी वन में भटककर क्यों बेसुमार पीडा को भुगत रहे हो ? जिनेश्वर भगवान जगत पर उपकार करने में तत्पर हैं, उन्हीं के वचनों का अनुसरण करना । ।।7।।

विनय से कुछ कहा जाता है वह निश्चित ही हितकारक होता है । ध्यान देकर उसे सुनना । अनेक प्रकार के पुण्य और विविध प्रकार के सुखों से जुडानेवाला शांत सुधा का अमृतपान करो ।।8।।

4. माध्यस्थ भावना

जिसमें शांत और थके हुए प्राणी विश्राम पाते हैं, जिसके कारण बीमारी और रुग्ण आदमी प्रसन्नता अनुभव करते हैं । रागद्वेष का रोष होता है तो सहज उदासीनता जिससे मिलती है ऐसा मध्यस्थभाव हमारे लिए इष्ट है ।।1।।

इस जगत में अलग-अलग प्रकार के कर्मों के कारण प्राणी रागद्वेष (पसंद, नापसंद, अच्छा, बुरा) के शिकंजे में जकडा हुआ है । तब समझदार आदमी किसकी प्रशंसा करे, किस पर गुस्सा करे ? ।।2।।

स्वयं-परमात्मा महावीर स्वामी भी अपने शिष्य जमाली के मिथ्या प्ररुपणा को रोक नहीं सके ! तो कौन किसे पाप से रोक सकता है ? इसीलिए तो उदासीन-माध्यस्थ भाव रखना मुमुक्षु के लिए हितावह है ।।3।।

तीर्थंकरो में अमाप बल होता है ! छोटी अँगुली से मेरुपर्वत को भी हिला देने की शक्ति तीर्थंकरों में होती हैं । फिर भी वे जबरदस्ती किसीको धर्मप्रवृत्ति में प्रवृत्त नहीं करते । हाँ, यथार्थ उपदेश जरूर देते हैं । अगर सुननेवाला इस धर्म को स्वीकार ले तो भवसागर तिर जाता है ।।4।।

अतः हे संतपुरुषों ! तुम उदासीनता रूपी अमृतरस का वारंवार आस्वाद लेना । उछलती हुई इस आनंद की लहरों के सहारे प्राणी मुक्ति सुख पाता है ।

हे विनय !

तुम उदार और श्रेष्ठ उदासीनता रूपी सुख का सदा अनुभव करते रहना । उदासीनता भाव परम-कल्याणकारी है । सभी शास्त्रों का सार और इष्ट फल देनेवाला ऐसे उदासीन भाव का अनुभव लेना ।।1।।

दूसरों की चिंता करने की आदत छोड दें और अपने अविकारी आत्मस्वरूप की शुद्धि के लिए उनका चिंतन कर ! कोई इस संसार में काँटों से प्यार करता हो या फूलों से इससे तेरा क्या लेना-देना ? ।।2।।

तुम किसीको हितशिक्षा देते हो पर सामनेवाला उस पर गौर नहीं करता, तो उसको बतला दे, तुम क्यों नाहक उस पर गुस्सा होते हो ? उसकी चिंता करके तुम क्यों अपने आत्मसुखानुभव से वंचित होते हो ? ।।3।।

कुछ जड़-बुद्धिवाले लोग शास्त्रों में कही हुई बातों पर बिल्कुल ही विश्वास नहीं रखते । अपना ही अनुभव हीन तर्क चलाते हैं ।

कोई अच्छा ताजा दूध छोड़कर मूत्र पीना चाहेगा ? तो हम क्या कर सकते हैं ? ।।4।।

चित्त को आल्हाद बनानेवाली समता को हृदय में धारण कर, मायाजाल से दूर ही रहना । तुम्हारी आयु बहुत थोडी है, तुम व्यर्थ ही परपुद्गल की गुलामी में दीनहीन क्यों बनते हो ? ।।6।।

तुम्हारा शुद्ध चैतन्य जो किसी तीर्थ से कम नहीं है । वह तुम्हारे भीतर ही विराजमान है । उसी का वारंवार स्मरण करना वही तुम्हें दीर्घकाल तक सुख प्रदान कर सकता है ।।7।।

उदासीन भाव ऐसा साधन है जो केवलज्ञान का द्वार खोलता है । उसे प्राप्त करने के लिए विनयविजयजी महाराज द्वारा रचित इस 'शान्त-सुधारस' का तुम पान करना ।।8।।

इस प्रकार सद्भावनाओं से सुवासित हृदयवाला आत्मा संशयातीत बनकर आत्मतत्त्व के चिंतन से मोह, निद्रा, ममत्व इ. से तत्काल दूर हो जाता । सत्ववंत बनकर निर्ममत्वभाव धारण करता है । सौ-सौ चक्रवर्तियों के सुख से भी अधिक सुख का अनुभव होता है । उन सुखों का अपने चारों और प्रसारित करके अपना भी यश फैलाता है । परिणामस्वरूप मोक्षगति को प्राप्त करता है ।।9।।

ऐसी उत्कृष्ट भावना के प्रभाव से दुर्ध्यानरूपी पीडा किंचित मात्र भी परेशान नहीं करती । अनिर्वचनीय सुख वृद्धिगत होता है, चित्त की प्रसन्नता दिन-दूनी-रात चौगुनी बढ़ती है । मन संतोषामृत का पान करता है । राग-द्वेष इत्यादि आत्मा के दुश्मन नष्ट हो जाते हैं । आत्मसमृद्धि में आत्मानुभूति में रममाण हो जाता है । इस विनय गुण से निर्मल बुद्धि बनाकर तुम इस भावना का ध्यान करना ।

श्री हीरविजयसूरीश्वरजी के दो शिष्य जो सगे भाई थे - श्री सोमविजयजी वाचक और वाचकवर्य श्री कीर्तिविजयजी ! ।।3।।

श्री कीर्तिविजयजी वाचक के शिष्य उपाध्याय श्री विनयविजयजी ने 'शांत-सुधारस' नाम का यह भावना-प्रबंध ग्रंथ लिखा है ।।4।।

विक्रम संवत 1723 में गंधपुर (गंधार) नगरी में यह अनूठी रचना हुई । तत्कालीन जैनाचार्य श्री विजय प्रभसूरीश्वरजी के कृपाप्रसाद से इस ग्रंथरचना का कार्य सफल हुआ ।।5।।

सोलह कलाओं से संपन्न चंद्रमा जिस प्रकार सृष्टि में आनंद फैलाता है वैसे ही सोलह विभागों में विभाजित यह ग्रंथ भी सबके लिए कल्याणकारी बने ।।6।।

जब तक इस विश्व में सूर्य-चंद्र रहेंगे तब तक यह 'शांत-सुधारस' ग्रंथ सज्जनों के मन को प्रसन्न करता रहेगा । साथ ही चित्त में स्थिरता निर्माण करेगा ।

7. प्रश्नोत्तरी

स. 1 **परिषह याने क्या ? वे कितने हैं ? कौन-कौन से ?**

उ. परिषह याने कर्म निर्जरा के लिए इच्छापूर्वक उपसर्ग सहन करना । परिषह 19 कहे गए हैं । इस प्रकार हैं ।

1) क्षुधा परिषह, 2) पिपासा परिषह, 3) शीत परिषह, 4) उष्ण परिषह, 5) दंश परिषह, 6) अचेलक परिषह, 7) अरति परिषह, 8) स्त्री परिषह, 9) चर्या परिषह, 10) नैषेधिकी परिषह, 11) शय्या परिषह, 12) आक्रोश परिषह, 13) वध परिषह, 14) याचना परिषह, 15) अलाभ परिषह, 16) रोग परिषह, 17) तृणस्पर्श परिषह, 18) मल परिषह, 19) सत्कार परिषह, 20) प्रज्ञा परिषह, 21) अज्ञान परिषह, 22) सम्यक्त्व परिषह ।

स. 2 **यति धर्म याने क्या ? वे कितने हैं ? कौन-कौन से हैं ?**

उ. यतिधर्म याने संयम धर्म में दोष न लगे उसका अच्छी तरह पालन किया जाय उसके लिए जो नियम हैं वे यतिधर्म । **यतिधर्म दस हैं** । 1) क्षमाधर्म यानी क्रोध न करना, 2) मार्दवधर्म-अभिमान न करना, नम्रता रखना, 3) आर्जवधर्म-कपट न करना-सरलता रखना, 4) मुक्तिधर्म-लोभ न करना, 5) तपधर्म-पापकारी इच्छा पर संयम, 6) संयमधर्म-पांच अव्रत, पाँच इन्द्रियों पर अंकुश चार कषाय, तीन दंड-ऐसे सत्रह का त्याग करा, 7) सत्यधर्म-सत्य बोलना, 8) शौचधर्म-शरीर शुद्ध रखना तथा आत्मा के शुद्ध परिणाम रखना, 9) अकिंचन धर्म- किसी भी वस्तु पर ममत्व भाव न रखना, 10) ब्रह्मचर्य-शील का पालन करना ।

स. 3 **भावना यानी क्या ? वे कितनी हैं ? कौन-कौन सी हैं ?**

उ. भावना यानी संसार का मोह घटाना और मोक्ष प्राप्त करने की तीव्र इच्छा । भावनाएँ 12 हैं ।

1) अनित्य भावना-शरीर, धन, धान्य, परिवार इ. कुछ भी कायम रहनेवाला नहीं, सब नाशवंत है, ऐसा विचार करके उसपर के ममत्व का त्याग करना ।

2) अशरण भावना-जन्म-मरण के दु:ख से बचानेवाला धर्म के सिवा कोई समर्थ नहीं, धर्म की ही शरण है ऐसा चिंतन करना ।

3) संसार भावना-संसार परिवर्तनशील है । हमारे इस जन्म के जो रिश्ते हैं वे हर जनम में बदलते हैं । आज जो माँ के रूप में वह किसी जन्म में पत्नी, बहन, पिता, पुत्री इ. भी रह चुकी है । ऐसे संसार की घटना का विचार करना यानी संसार भावना ।

4) एकत्व भावना - जीव अकेला जन्मता है और अकेला ही मरता है । अकेला ही कर्म बांधता है और अकेला ही अपने किए कर्मों के फल भुगतता है । अतः जन्म मरण के चक्कर से कैसे मुक्त हों इस प्रकार का चिंतन करना ।

5) अन्यत्व भावना - आत्मा और शरीर भिन्न है । शरीर अनित्य है । मैं (आत्मा) नित्य हूँ । शरीर जड़ है, मैं चेतन हूँ इस प्रकार आत्मरमण करते-करते उसमें स्थिर रहने के लिए चिंतन करना ।

6) अशुचि भावना-यह शरीर रक्तमांस से भरा हुआ है, अपवित्र है । ऐसे शरीर पर क्या 'ममत्व' करना ? इतना ही नहीं गंदे नाले के समान इस शरीर में से सतत अशुचि बहती रहती है । ऐसा विचार करके शरीर से ममत्व भाव हटे इसलिए इस भावना का चिंतन करना ।

7) आश्रव भावना - पाप और पुण्य दोनों आश्रव है यानी कर्म दल है अतः दया, दान इ. से शुभ कर्म बाँधे, क्रोध इ. से अशुभ कर्म बंधते हैं अतः आत्मा अशुभ से मलिन न बने इसलिए इस भावना का चिंतन करना ।

8) संवर भावना- समिति, गुप्ति इ. के पालन से कर्म रोके जाते हैं । ऐसा विचार कर कर्म रोकने के लिए इसका चिंतन करना।

9) निर्जरा भावना : बारह प्रकार के तप द्वारा कर्म धीरे-धीरे नाश होते हैं अतः तप द्वारा कर्म खपाना ऐसी भावना करना।

10) लोक स्वभाव भावना-इस जगत् का स्वरूप, उत्पत्ति, स्थिति और नाश का स्वभाव है ऐसा विचार कर उसमें जागृत रहना ।

11) बोधिदुर्लभ भावना-1) जीव को सब कुछ मिल सकता है परंतु समकित प्राप्त करना बहुत दुर्लभ है । ऐसा समकित प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना वह बोधि दुर्लभ भावना ।

12) धर्म भावना-इस संसार में श्री वीतराग देव ने जो धर्म बताया है वह और श्री अरिहंत इ. भगवंत का योग पाना महादुर्लभ है । ऐसा विचार कर अरिहंतादि भगवंतों की भक्ति करना यह धर्म भावना ।

स. 4 मैत्री, प्रमोद, कारुण्य और माध्यस्थ भावना याने क्या ?

उ. 1) मैत्री भावना यानी सभी जीवों के साथ मित्रता भाव रखना ।

2) प्रमोद भावना यानी गुणी जनों के गुण देखकर हर्षित होना ।

3) कारुण्य भावना यानी हर दु:खी जीव तथा धर्महीन जीवों पर भी दया करना । 4) माध्यस्थ भावना यानी अज्ञानी अथवा मूढ जीवों के प्रति माध्यस्थ(तटस्थ) भाव रखना ।

स.5 चारित्र यानी क्या ? कितने हैं ? कौन-कौन से ?

उ. चारित्र यानी कर्मसमूह का जो नाश करे उसे चारित्र कहते हैं । चारित्र के पाँच प्रकार 1) सामायिक चारित्र 2) छेदोपस्थापनीय चारित्र 3) परिहार विशुद्धि चारित्र 4) सूक्ष्म संपराय चारित्र 5) यथाख्यात चारित्र ।

स. 6 इन उपर्युक्त पाँच चारित्र का अर्थ समझाओ ।

उ. 1) सामायिक चारित्र-सामायिक अर्थात् समभाव । समभाव की साधना को सामायिक चारित्र कहते हैं । अथवा सावद्य-प्रवृत्ति का परित्याग और निरवद्य प्रवृत्ति का आसेवन सामायिक चारित्र है ।

2) छेदोपस्थापन चारित्र-जिस चारित्र में पूर्वगृहीत चारित्रपर्याय का छेद एवं महाव्रतों में आरोपण होता है, उसे छेदोपस्थापन चारित्र कहते हैं ।

3) परिहार विशुद्धि चारित्र-जिस चारित्र में परिहार नामक विशेष तप किया जाता है । उसे परिहार विशुद्धि चारित्र कहा जाता है । परिहार तप से आत्मा की विशेष शुद्धि होती है । परिहार अर्थात् संघ से पृथक् होकर विशिष्ट तपस्या से आत्मा की शुद्धि करना परिहार विशुद्धि है । यह तपस्या 18 महिने तक की जाती है । यह चारित्र नौ पूर्व से अधिक और दस पूर्व से कम ज्ञान प्राप्त करनेवाले साधुओं को होता है ।

4) सूक्ष्मसंपराय चारित्र-सम्पराय का अर्थ कषाय है । इस चारित्र में केवल सूक्ष्म संज्वलन रूप लोभ कषाय ही शेष रह जाता है । अतः इसको सूक्ष्म सम्पराय चारित्र कहते हैं । यह चारित्र दसवें गुणस्थान में होता है ।

5) यथाख्यात चारित्र-सर्वथा कषाय के उदय का अभाव याने विशुद्ध चारित्र । अतिचार से रहित चारित्र को यथाख्यात चारित्र कहते हैं ।

स. 7 **तप यानी क्या ? तप के कितने प्रकार हैं ? कौन-कौन से ?**

उ. तप यानी कर्म को तपाना । छ बाह्य और छ आभ्यंतर इस प्रकार तप के बारह प्रकार हैं ।

स. 8 **बाह्य तप के नाम लिखो और समझाओ ।**

उ. छ प्रकार के बाह्य तप : 1) अनशन : चारों प्रकार के आहार का थोडे समय के लिए अथवा लंबे समय तक त्याग करना । 2) उणोदरी-भूख से कम खाना । 3) वृत्तिसंक्षेप-खानेपीने की तथा अन्य चीजों का उपभोग घटाना । 4) रसत्याग-दूध, दही इ. 6 विगयो में से एक अथवा अधिक का त्याग करना । सुस्वाद का त्याग । 5) कायक्लेश-लोच, काउस्सग्ग इ. द्वारा काया का दमन करना । 6) संलीनता-अंगोपांग को संकुचित करना अथवा एकांत शय्यासन करना ।

स. 9 **आभ्यंतर तप के नाम लिखकर समझाओ ।**

उ. छः प्रकार के आभ्यंतर तप : 1) प्रायश्चित्त-लगे हुए दोषों को गुरु के सामने कबूल करना और आलोचना करना । 2) विनय-गुरु, ज्ञान, दर्शन इत्यादि का विनय करना । 3) वैयावच्च-आचार्यादि की सेवा करना । 4) स्वाध्याय-धर्म संबंधी वाचना, पृच्छा, परावर्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथा पाँच प्रकार से धर्म का अभ्यास करना । 5) ध्यान-आर्तध्यान, रौद्रध्यान छोड़कर धर्मध्यान, शुक्लध्यान ध्याना । 6) कायोत्सर्ग-कर्मक्षय के लिए काउस्सग्ग करना ।

स. 10 **आचार यानी क्या ? वे कितने और कौन-कौन से हैं ?**

उ. आचार यानी सम्यक् आचरण । आचार पाँच हैं ।

1) ज्ञानाचार-ज्ञान सिखाना, सीखना, सीखनेवालों की सहायता करना ।

2) दर्शनाचार-श्री जिनेश्वर देव के वचनों पर श्रद्धा रखना, रखवाना और धर्म से डिगते प्राणी को स्थिर करना, अरिहंत इ. की भक्ति करना ।

3) चारित्राचार-चारित्र पालना, पलवाना, चारित्र से डिगते प्राणी को स्थिर करना ।

4) तपाचार-तप करना, करवाना, तप करनेवालों की अनुमोदना करना । सहायता करना ।

5) वीर्याचार-धर्मकार्य में शक्ति का उपयोग करना, करवाना और करनेवालों की अनुमोदना करना ।

स. 11 **लेश्या यानी क्या ? वे कितनी हैं ? कौन-कौन सी ?**

उ. जीव के शुभाशुभ परिणाम को लेश्या कहते हैं ।

लेश्या 6 प्रकार की । 1) कृष्णलेश्या 2) नील लेश्या 3) कापोत लेश्या 4) तेजो लेश्या 5) पद्म लेश्या 6) शुक्ल लेश्या ।

स. 12 **पृथ्वी के सात नाम कौन से हैं ? वे नाम किस रूप से पडे हैं ? समझाओ ।**

उ. 1) रत्नप्रभा-जिस पृथ्वी में रत्न भरे पडे हैं । 2) शर्करा प्रभा-जिस पृथ्वी में पत्थर अधिक प्रमाण में हों । 3) वालुका प्रभा-जिसमें रेती बहुत हो ऐसी पृथ्वी । 4) पंकप्रभा-कीचड युक्त पृथ्वी । 5) धूमप्रभा-धुँआ हो ऐसी पृथ्वी । 6) तमः प्रभा-अंधकार युक्त पृथ्वी । 7) तम-तमाप्रभा-निबिड अंधकारमय पृथ्वी ।

स. 13 **सात नरकों के नाम बताकर वे कौनसी पृथ्वी पर है यह भी बताओ ।**

उ. सात नरकों के नाम - 1) धम्मा 2) वंशा 3) शीला 4) अंजना 5) रिष्ठा 6) मघा 7) माधवती ।

ये सातों नरक अनुक्रम से रत्नप्रभा आदि एक-एक पृथ्वी स्वरूप हैं ।

स. 14 **परमाधामी देव यानी क्या ? कितने हैं ? उनके नाम लिखो ।**

उ. परमाधामी देव यानी नारकी जीवों को जो दुःख देते हैं वे देव । वे पंद्रह प्रकार के हैं । उनके नाम-1) अंब 2) अंबरिष 3) श्याम 4) शबल 5) रुद्र 6) उपरुद्र 7) काल 8) महाकाल 9) आसिपत्र 10) वन 11) कुंभी 12) वालुका 13) वैतरणी 14) खरस्वर 15) महाघोष ।

स. 15 **भवनपति देव यानी क्या ? वे कितने हैं ? उनके नाम लिखो ।**

उ. भवनपति देव यानी भवन में रहनेवाले देव । वे दस प्रकार के हैं । उनके नाम : 1) असुरकुमार 2) नागकुमार 3) सुवर्णकुमार 4) विद्युतकुमार

5) अग्निकुमार 6) द्वीपकुमार 7) उदधिकुमार 8) दिशिकुमार 9) पवनकुमार 10) स्तनितकुमार ।

स. 16 **व्यंतर और वाणव्यंतर देवों के कितने प्रकार हैं ? उनके नाम लिखो । वे कहाँ रहते हैं ?**

उ. व्यंतर और वाणव्यंतर देव व्यंतर निकाय में तथा नदी, पर्वत, इ. में रहते हैं । वे आठ-आठ हैं ।

व्यंतरों के नाम	**वाणव्यंतरों के नाम**
1. पिशाच	1. अणपन्नी
2. भूत	2. पणपन्नी
3. यक्ष	3. इसीवादी
4. राक्षस	4. भूतवादि
5. किन्नर	5. कंदित
6. किंपुरुष	6. महाकंदित
7. महोरग	7. कोहंड
8. गंधर्व	8. पतंग

स. 17 **तिर्यग्झुंबक देव यानी कौन ? वे कितने प्रकार के हैं ? कहाँ रहते हैं ? उनके नाम लिखो ।**

उ. तिर्यग् झुंभक देव यानी तीर्थंकर भगवान के घर में अन्न-पानी-वस्त्र इ. से भक्ति करनेवाले वैसे ही अन्न आदि का स्वाद, बेस्वाद को जाननेवाले देव । वे वैताढय पर्वत पर रहते हैं । वे नौ प्रकार के हैं ।

1) अन्नझुंभक 2) पान झुंभक 3) वस्त्रझुंभक 4) घरझुंभक 5) पुण्यझुंभक 6) फलझुंभक 7) पुष्पफलझुंभक 8) विद्याझुंभक 9) अवियत्त झुंभक ।

स. 18 **ज्योतिषी देव यानी कौन ? वे कितने प्रकार के हैं ? वे कहाँ रहते हैं ? उनके नाम लिखो ।**

उ. ज्योतिषी देव यानी प्रकाश देनेवाले देव । वे पाँच प्रकार के हैं । मेरुपर्वत की समतल पृथ्वी से 780 योजन उँचाई पर तारा के विमान है । वहाँ से दस योजन ऊँचाई पर सूर्य का विमान है । वहाँ से 80 योजन ऊँचा चंद्र का विमान है । वहाँ से चार योजन ऊँचे नक्षत्र के विमान है । वहाँ

से 16 योजन ऊँचा ग्रहों के विमान हैं । वहाँ वे सब रहते हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं । 1) चंद्र 2) सूर्य 3) ग्रह 4) नक्षत्र 5) तारा ।

स. 19 **वैमानिक देव यानी क्या ? वे कितने प्रकार के हैं ? कौन-कौन से हैं ?**

उ. वैमानिक देव यानी विमान में उत्पन्न होनेवाले देव । वे दो प्रकार के हैं ?

1) कल्पोपपन्न इन्द्र इ. दस प्रकार की व्यवस्थावाले देव ।

1) कल्पातित-स्वामी-सेवक भाव रहित देव ।

स. 20 **बारह देवलोग के नाम लिखो ।**

उ. 1) सौधर्म 2) ईशान 3) सनत्कुमार 4) महेन्द्र 5) ब्रह्मलोक 6) लांतक 7) महाशुक्र 8) सहस्त्रार 9) आनत 10) प्राणत 11) आरण 12) अच्युत ।

स. 21 **नव लोकांतिक के नाम लिखो ।**

उ. 1) सारस्वत 2) आदित्य 3) वह्नि 4) अरुण 5) गर्दतोय 6) तृषित 7) अव्याबाध 8) मरुत 9) अष्टि ।

ये लौकांतिक देव पाँचवे देवलोक में रहते हैं । वे तीर्थंकर परमात्मा के दीक्षा के समय कहने आते हैं "अब दीक्षा का समय आ गया है दीक्षा लीजिए" । यह उनका जीत व्यवहार होता है । ये देवता प्राय: एक भव अवतारी होते हैं ।

स. 22 **नौ ग्रैवेयक के नाम लिखो ।**

उ. 1) सुदर्शन 2) सुप्रतिबद्ध 3) मनोरम 4) सर्वतोभद्र 5) सुविशाल 6) सुमनस 7) सौमनस 8) प्रियंकर 9) नंदिकर ।

स. 23 **पाँच अणुत्तर के नाम लिखो ।**

उ. 1) विजय 2) विजयंत 3) जयंत 4) अपराजित 5) सर्वार्थसिद्ध ।

स. 24 **शाश्वत अठ्ठाई याने क्या ? कौन-कौनसी ? देव शाश्वत अठ्ठाई का महोत्सव मनाने कहाँ जाते हैं ?**

उ. शाश्वत अठ्ठाई याने सदाकाल प्रभुभक्ति आदि आराधना के दिन । शाश्वती अठ्ठाई दो - 1) चैत मास में आनेवाली आयंबिल ओली । 2) आसो मास में आनेवाली आयंबिल ओली । शाश्वत अठ्ठाई में देव महोत्सव मनाने श्री नंदिश्वर द्वीप पर जाते हैं ।

स. 25 **ज्ञान कितने हैं ? कौन-कौन से ? उसका स्वरुप समझाओ ।**

उ. ज्ञान पाँच हैं-1) मतिज्ञान : पाँच इन्द्रियों के द्वारा और मन के द्वारा विशेष बोध होता है वह मतिज्ञान ।

2) श्रुतज्ञान-गुरु महाराज के उपदेश से अथवा पुस्तकों द्वारा जाना जाय वह श्रुत ज्ञान ।

3) अवधिज्ञान-पाँच इन्द्रियाँ और मन की सहायता के बिना रुपी द्रव्यों को विशिष्ट पद्धति से जाना जाय वह अवधिज्ञान ।

4) मन:पर्यवज्ञन-संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के मन के भाव जिसके द्वारा जानी जाय या देखी जाय वह केवलज्ञान ।

5) केवलज्ञान-जगत् की सर्व वस्तु प्रतिसमय जिसके द्वारा साक्षात् जाना जाय वह मन:पर्यवज्ञान ।

स. 26 **तीर्थंकरों के जन्म से कितने ज्ञान होते हैं ? शेष ज्ञान कब प्राप्त होते हैं ?**

उ. तीर्थंकर परमात्मा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान ये तीन ज्ञान जन्म के साथ ही होते हैं । चौथा मन:पर्यवज्ञान दीक्षा लेते ही तुरंत प्राप्त होता है । और पाँचवा केवलज्ञान घाती कर्मों को नाश करने पर प्राप्त होता है ।

स. 27 **तीर्थंकर परमात्मा की पहचान क्या है ?**

उ.
1) हर प्राणी अपनी-अपनी भाषा में तीर्थंकर परमात्मा की वाणी सुन और समझते हैं ।
2) वे जहाँ से विचरण करते हैं वहाँ रोग, शोक और उपद्रव का नाश हो जाता है ।
3) देव और इन्द्र भी उनकी देशना सुनने आते हैं । भगवंत हमेशा अष्ट प्रतिहार्य युक्त होते हैं ।
4) जगत की समस्त वस्तुओं को वे हस्त कमलवत् देख ओर जान सकते हैं ।

स. 28 **तीर्थंकर, गणधर और सामान्य केवली कौन हो सकते हैं ?**

उ. 1) सर्व जीवों का भला करने की भावना रखनेवाला जीव तीर्थंकर परमात्मा हो सकते हैं ।

2) अपने आसपास के स्वजनों का भला करने की भावनावाले जीव गणधर भगवंत होते हैं ।

3) सिर्फ अपना ही भला करने की भावनावाले जीव केवलज्ञान प्राप्त कर सामान्य केवली हो जाते हैं ।

स. 29 तीर्थंकर परमात्मा की माता को जो 14 सपने आते हैं उनके नाम लिखो ।

उ. 1) हाथी 2) वृषभ 3) केसरीसिंह 4) लक्ष्मी 5) फूल की माला 6) चंद्र 7) सूर्य 8) ध्वज 9) कलश 10) पद्मसरोवर 11) रत्नाकर 12) विमान 13) रत्नराशी 14) धुएँ बिना की अग्नि शिखा ।

स. 30 प्रभु के जन्म के समय 56 दिक्‌कुमारियाँ आकर क्या करती हैं ?

उ. आठ दिक्कुमारियाँ कचरा निकालने का आचार करती हैं ।

आठ दिक्कुमारियाँ सुगंधी पंचामृत जल की वृष्टि करती हैं ।

आठ दिक्कुमारियाँ कलश धारण करती हैं ।

आठ दिक्कुमारियाँ दर्पण धारण करती हैं ।

आठ दिक्कुमारियाँ चामर डुलती हैं ।

आठ दिक्कुमारियाँ पंखा झुलाती हैं ।

चार दिक्कुमारियाँ भगवान के हाथ में राखी बाँधती हैं ।

चार दिक्कुमारियाँ प्रभु के पास दीपक लेकर खडी होती हैं ।

स. 31 प्रभु के जन्माभिषेक के समय देवता कितने सोनैया की वृष्टि करते हैं ?

उ. 1) प्रभु के जन्माभिषेक समय बत्तीस करोड सोनैया की वृष्टि करते हैं ।

2) एक करोड साठ लाख (1,60,00,000) कलश से इन्द्रादि देव अभिषेक करते हैं ।

स. 32 श्री महावीर परमात्मा के कितने गणधर थे ? उनके नाम बताओ ।

उ. श्री महावीर परमात्मा के 11 गणधर थे ।

1) गौतमस्वामी (इन्द्रभूति)
2) अग्निभूति
3) वायुभूति
4) व्यक्त (विगतभूतिजी)
5) सुधर्मा
6) मंडिपुत्रजी
7) मौर्यपुत्रजी
8) अकंपितजी
9) अचलभ्राताजी
10) मेतार्यजी
11) प्रभासजी

स. 33 श्री महावीरप्रभु के मुख्य साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका के नाम लिखो ।

उ. श्री महावीर प्रभु के मुख्य साधु-श्री गौतमस्वामीजी, साध्वी-श्री चन्दनबाला, श्रावक-आनंद और श्राविका-सुलसा ।

स. 34 श्री तीर्थंकर परमात्मा में कितना बल होता है ?

उ. 12 योद्धा का बल 1 में ।

10 का बल 1 घोड़े में ।

12 घोड़े का बल 1 पाडे में ।

15 पाडे का बल 1 हाथी में ।

500 हाथी का बल 1 सिंह में ।

2000 सिंह का बल 1 अष्टापद(प्राणी) में ।

10 लाख अष्टापद का बल 1 बलदेव में ।

2 बलदेव का बल 1 वासुदेव में ।

2 वासुदेव का बल 1 चक्रवर्ती में ।

10 लाख चक्रवर्ती का बल 1 नागेन्द्र में ।

1 क्रोड नागेन्द्र का बल 1 इन्द्र में ।

अनंत इन्द्रों का बल जिनेश्वर की एक कानी उँगली में होता है ।

स. 35 तीर्थंकर याने क्या ? तीर्थंकर कितने हुए ? कितने होंगे ?

उ. तीर्थंकर साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका इन चार संघ की स्थापना करते हैं । धर्म तीर्थ का प्रचार करनेवाले ऐसे अनंत तीर्थंकर हो गए और अनंता तीर्थंकर होंगे ।

स. 36 श्री जिनेश्वर देव के जन्म के समय कैसे चमत्कार होते है ?

उ. 1 नरक के जीवों को क्षणभर शाता मिलती है ।

2 दसों दिशाओं में शीतल मधुर सुगंधित पवन बहती है ।

3 इन्द्र महाराज और दिक्कुमारियों के आसन चलायमान होते हैं ।

स. 37 तीर्थंकर परमात्मा दीक्षा के समय हररोज कितनी सोनैया का दान करते हैं ।

उ. तीर्थंकर परमात्मा हररोज एक करोड आठ लाख(1,08,00,00) सोनैया का दान करते हैं ।

स. 38 श्री महावीर प्रभु के साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका की संख्या कितनी थी ?

उ. श्री सुधर्मास्वामीजी आदि 14000 साधु, चंदनबाला आदि 36000 साध्वी, आनंद आदि 159000 श्रावकों, सुलसा आदि 3,18,000 श्राविकाएँ थी ।

स. 39 **श्री महावीर प्रभु ने साढ़े बारह वर्ष में कितने पारणा किए ?**

उ. श्री महावीर प्रभु ने 349 पारणे किये ।

स. 40 **कर्म यानी क्या ? वे कितने हैं ? कौन-कौन से ? उनके उत्तरभेद (प्रकृतियाँ) कितने हैं ?**

उ. मिथ्यात्व-गलत धारणा इ. द्वारा जीव जो कार्य करता है उन्हें कर्म कहा जाता है । वे मूल कर्म आठ हैं ।

1. ज्ञानावरणीय कर्म उसकी प्रकृतियाँ (उत्तरभेद)	5
2. दर्शनावरणीय कर्म उसकी प्रकृतियाँ (उत्तरभेद)	9
3. वेदनीय कर्म उसकी प्रकृतियाँ (उत्तरभेद)	2
4. मोहनीय कर्म उसकी प्रकृतियाँ (उत्तरभेद)	28
5. आयु कर्म उसकी प्रकृतियाँ (उत्तरभेद)	4
6. नाम कर्म उसकी प्रकृतियाँ (उत्तरभेद)	93 या 103
7. गोत्र कर्म उसकी प्रकृतियाँ (उत्तरभेद)	2
8. अंतराय कर्म उसकी प्रकृतियाँ (उत्तरभेद)	5

इस प्रकार आठ कर्मों के उत्तरभेद(प्रकृतियाँ) 148 अथवा 158 हैं ।

स. 41 **घाती कर्म की प्रकृतियाँ कितनी हैं ? कौनसी ? उनका नाश होने पर क्या प्राप्त होता है ?**

उ. घाती कर्म यानी आत्मा के ज्ञानादि गुणों को ढँकनेवाले कर्म । वे चार हैं : 1. ज्ञानावरणीय 2. दर्शनावरणीय 3. मोहनीय 4. अंतराय ।

1. ज्ञानावरणीय का नाश होते ही अनंतज्ञान गुण प्रकट होता है ।

2. दर्शनावरणीय का नाश होते ही अनंत दर्शन गुण प्रकट होता है ।

3. मोहनीय का नाश होते ही क्षायिक सम्यक्त्व और यथाख्याता चारित्र गुण प्रकट होता है ।

4. अंतराय का नाश होने पर अनंत दान आदि गुण प्राप्त होते हैं ।

स. 42 **अघाती कर्म यानी क्या ?**

उ. अघाती कर्म यानी शरीर को सुख-दुःख देनेवाले कर्म ।

स. 43 **ज्ञानावरणीय कर्म कैसे बाँधे जाते हैं ? उसके कौनसे कठिन फल भोगने पडते हैं ।**

उ. ज्ञान या ज्ञानी की निंदा, अवज्ञा-आशातना वगैरह करने से ज्ञानावरणीय कर्म का बंध होता है । इससे परभव में बुद्धि अक्कल नहीं मिलती । स्मरणशक्ति नहीं मिलती । शरीर में किसी अवयव में व्यंग्य रहता है । जहाँ-तहाँ अपमान होता है । दिनभर मजूरी करता है पर पेटभर खाना नहीं मिलता ।

स. 44 **दर्शनावरणीय कर्म किन कारणों से बँधते हैं ? और उसके कैसे फल भोगने पडते हैं ?**

उ. जो जीव दर्शन-दर्शनो की निंदा करते है-ज्ञानी के साथ वितंडावाद करता है । वह जीव दर्शनावरणीय कर्म बाँधता है । इस कारण पर भव में चक्षु इ. इन्द्रियों को नहीं पाता । रतांध बनता है, मोतियाबिंद, आँख में फूल पड़ना, पीलिया इ. आँख के रोग होते हैं ।

स. 45 **मोहनीय कर्म कौन बाँधता है । उसके कैसे फल भोगने पड़ते हैं ?**

उ. क्रोध करे, वैर रखे, इर्षा करे, वे मोहनीय कर्म बाँधते हैं । परभव में सर्प, बिच्छु, जहरीले जानवर का जन्म पाकर महा दुःखी बनते हैं । समकित, चारित्र वगेरे आत्मा के गुणों को नहीं पा सकता ।

स. 46 **अंतराय कर्म कौन बाँधता है ? उसके कैसे फल भोगने पड़ते हैं ?**

उ. जो धन, अन्न, पानी, वस्त्र इ. का दान करने नहीं देता, दान इ. करने में जो विघ्न डालता है वह अंतराय कर्म बाँधता हैं । इससे परभव में बहुत शारीरिक मेहनत करनी पड़ती है और दुःख भी भोगने पड़ते हैं । मेहनत करने पर भी दुःखी रहता है ।

स. 47 **श्री अरिहंत भगवान के बारह गुणों का वर्णन करो ।**

उ. तीर्थंकर परमात्मा के प्रबल पुण्योदय से देवता आकर्षित होकर प्रभुभक्ति करते हैं-वे आठ गुण और तीर्थंकर नाम कर्म के उदय से प्राप्त चार चमत्कारिक गुण मिलकर बारह गुण होते हैं । वे इस प्रकार :-

1. अशोकवृक्ष-देवता प्रभु के शरीर से बारह गुना ऊँचा अशोकवृक्ष की रचना करते हैं ।

2. सुरपुष्पवृष्टि-देवता चार कोस तक फूलों की वृष्टि करते हैं ।
3. दिव्यध्वनि-देवता वीणा, बांसुरी इ. द्वारा प्रभु की वाणी में सूर मिलाते हैं ।
4. चामर-देवता भगवान को चामर ढुलाते हैं ।
5. आसन-देवता भगवान को बैठने के लिए रत्नजडित सोने का सिंहासन बनाते हैं ।
6. भामंडल-देवता भगवान के मस्तक के पीछे तेजस्वी वलय निर्माण करते हैं । जो भगवान के तेज को संग्रहित कर लेता है । अगर यह देवद्वारा निर्मित वलय न हो तो भगवान के मुख की ओर देखना शक्य ही नहीं (इतना तेज भगवान का होता है) हमारी सामान्य आँखें उसे देखने में असमर्थ हैं ।
7. दुंदुभि-देवता दुंदुभि नामक वाजिंत्र बजाते हैं । उसमें से "हे भव्य जीवो ! शिवपुरी तक पहुँचने में सहायता करनेवाले ऐसे भगवान की भक्ति करो" ऐसी आवाज निकलती है, ऐसे शब्द हमें सुनाई देते हैं ।
8. छत्र-देवता हिरे, माणिक, मोती के हारों से सुशोभित तीन-तीन छत्रों की रचना करते हैं ।

उपर्युक्त आठ गुणों का प्रतिहार्य कहा जाता है ।

प्रतिहार्य=प्रभु के साथ रहनेवाली शोभा ।

9. अपायापगमातिशय-भगवान के लिए "राग-द्वेष रूपी अपाय=उपद्रव उसका अपगम याने नाश हो जाते हैं । अत: सर्व जीवों के प्रति अनुपम करुणा और समभाव होता है, इसलिए भगवान जहाँ-जहाँ विराजते हैं वहाँ हर दिशा में सवा सौ योजन तक रोग, महामारी, अकाल वगैरह कुछ भी अनिष्ट नहीं होता । अत: जीव परम शांति पाते हैं ।
10. ज्ञानातिशय-भगवान लोक-अलोक को पूर्णतया जानते हैं ।
11. पूजातिशय-भगवान की पूजा देवता, इन्द्र वगेरे सभी करते हैं ।
12. वचनातिशय-भगवान की वाणी 35 प्रकार के गुणों से युक्त होती है । देव, मनुष्य, तिर्यंच सभी अपनी-अपनी भाषा में समझते हैं । भगवान की वाणी एक योजन चारों तरफ से अस्खलित लयबद्धता

से, स्पष्टरूप से सुनाई देती है । उपर्युक्त चार गुणों को अतिशय कहा जाता है । अतिशय याने अद्‌भुत चमत्कार युक्त गुण ।

स. 48 **श्री सिद्ध भगवान के आठ गुणों के नाम बताओ और कौन से कर्म का नाश होने से कौन सा गुण प्राप्त होता है यह बताओ ।**

उ. 1. ज्ञानावरणीय कर्म का नाश होने से अनंत ज्ञानगुण की प्राप्ति ।

2. दर्शनावरणीय कर्म का नाश होने से अनंत दर्शन गुण ।

3. वेदनीय कर्म का नाश होने से सर्व प्रकार की पीडा से मुक्त होकर अव्याबाध सुख मिलता है ।

स. 49 **श्री जिनेश्वर देव अठारह दोषों से रहित होते हैं । वे अठारह दोष कौन से ?**

उ. 1. दानांतराय 2. लाभांतराय 3. भोगांतराय 4. उपभोगांतराय 5. वीर्यांतराय 6. हास्य 7. रति 8. अरति 9. भय 10. शोक 11. जुगुप्सा-निंदा 12. काम 13. मिथ्यात्व 14. अज्ञान 15.निद्रा 16. अविरति 17. राग 18. द्वेष ।

स. 50 **श्री तीर्थंकर भगवान को 34 अतिशय कब प्राप्त होते हैं ?**

उ. भगवान को चार अतिशय तो जन्म से ही प्राप्त रहते हैं । 19 अतिशय देवता द्वारा प्रेषित होते हैं और 11 अतिशय केवलज्ञान होते ही प्राप्त होते हैं ।

जन्म से प्राप्त चार अतिशय :-

1. अद्‌भुत रूप, मनोहर सुवास, रोगरहित मल पसीने से रहित शरीर 2. कमल के फूल की सुवास के समान श्वासोच्छवास । 3. आहार निहार की क्रिया कोई नहीं देख सकते ।

देवकृत 19 अतिशय :-1. आकाश में धर्मचक्र चलता है । 2. देवता चामर ढुलाते हैं । 3. देव पादपीठ सहित सुवर्ण का उज्ज्वल सिंहासन बनाते हैं । 4. सिर के उपर तीन छत्र एक पर एक होते हैं । 5. रत्नमय हजार योजन ऊँचा धर्मध्वज सबसे आगे चलता है । 6. चलते समय नौ सुवर्ण कमल की रचना होती है । 7. तीन गढ रूपे के, सुवर्ण के और रत्नों के होते है । हरएक पर अनुक्रम से सोने के रत्नों के और मणिरत्नों के कंगुरे होते हैं । 8. मनोहर चारों तरफ से धर्मदेशना देते हैं । भगवान की पीठ किसी को दिखाई नहीं देतीं । चारों तरफ से मुख दिखाई देता है ।

9. चैत्यवृक्ष बनाते हैं । 10. काँटे उलटे हो जाते हैं । 11. वृक्ष भी नमन करते हैं । 12. दुंदुभिनाद होता है । 13. हवा सुगंधित अनुकूल बहती है । 14. पक्षी प्रदक्षिणा करते हैं । 15. सुगंधित मनोहारी जल वर्षाव होता है । 16. विभिन्न रंगों के फूलों का जाजमसा बिछ जाता है । 17. भगवान के मस्तक, दाढी, मूँछ के बाल, नख बढ़ते नहीं । 18. जघन्य से करोड देव सेवा में रहते हैं । 19. ऋतु और विषय अनुकूल रहते हैं ।

केवल ज्ञान उत्पन्न होने वाले 11 अतिशय :-

1. एक योजन भूमि में करोड-करोड देव, मनुष्य और तिर्यंच बिना भय के एक साथ बैठकर देशना सुनते हैं । 2. योजन गामिनी वाणी, देव, मनुष्य और तिर्यंच अपनी-अपनी भाषा में समझ लेते हैं । 3. मस्तक के पीछे सूर्य मंडल से भी अधिक शोभायमान सुंदर भामंडल होता है । 4. श्री तीर्थंकरदेव जहाँ से विचरण करते हैं उस स्थान से पूर्व पश्चिम, उत्तर और दक्षिण इस प्रकार चारों दिशाओं में 25-25 योजन (सो-सो गाऊ) तक और उर्ध्व दिशा अधो दिशा में 50-50 गाऊ तक रोग उत्पन्न नहीं होते । 5. पाँचसौ गाऊ तक वैर उत्पन्न नहीं होता । 6. पाँचसौ गाऊ तक मरकी (मारी) उत्पन्न नहीं होती । 7. पाँच सौ गाऊ तक तीड का उपद्रव नहीं होता । 8. पाँच सौ गाऊ तक अतिवृष्टि नहीं होती । 9. पाँच सौ गाऊ तक अनावृष्टि नहीं होती । 10. पाँच सौ गाऊ तक दुष्काल नहीं होता । 11. पाँच सौ गाऊ तक स्वचक्र भय या अन्यचक्र भय उत्पन्न नहीं होता ।

स. 51 **तीर्थंकर भगवान की वाणी के 35 गुण कौनसे हैं ।**

उ. 1. संस्कार से युक्त वचनों का प्रयोग 2. भगवान् ऐसे उच्चस्वर (बुलन्द आवाज) से बोलते हैं कि एक-एक योजन तक चारों तरफ बैठी हुई परिषद(श्रोतागण) भली भाँती श्रवण कर लेती है । 3. 'रे' 'तू' इत्यादि तुच्छता से रहित सादे और मानपूर्ण वचन बोलते हैं । 4. मेघगर्जना के समान भगवान की वाणी सूत्र से और अर्थ से गंभीर होती है । उच्चारण और तत्त्व दोनों दृष्टियों से उनकी वाणी का रहस्य बहुत गहन होता है । 5. जैसे गुँफा में और शिखरबद्ध प्रासाद में बोलने से प्रतिध्वनि उठती है

उसी प्रकार भगवान की वाणी की भी प्रतिध्वनि उठती है ।6. भगवान के वचन श्रोताओं को शहद के समान स्निग्ध और मधुर लगते हैं ।7. भगवान के वचन 7 राग और 30 रागिनीरूप परिणत होने से श्रोताओं को उसी प्रकार मुग्ध और तल्लीन बना देते हैं जैसे पूंगी का शब्द सुनकर नाग और वीणा का शब्द सुनकर मृग मुग्ध और तल्लीन हो जाता है ।8. भगवान के वचन सूत्ररूप होते हैं ।उनमें शब्द थोड़े और अर्थ बहुत होता है ।9. भगवान के वचनों में परस्पर विरोध नहीं होता ।10. उनका उपदेश सिलसिलेवार होता है ।11. भगवान ऐसी स्पष्टता (खुलासा) करके उपदेश देते हैं कि श्रोताओं को किंचित भी संशय नहीं होता ।12. बडे-से बडे पंडित भी भगवान के वचन में किंचित मात्र भी दोष नहीं निकाल सकते ।13. भगवान के वचन सुनते ही श्रोताओं का मन एकाग्र हो जाता है ।उनके वचन सब को मनोज्ञ लगते हैं ।14. बडी विचक्षणा के साथ देश काल के अनुसार बोलते हैं ।15. सार्थक और सम्बद्ध वचनों से विस्तार तो करते हैं किंतु व्यर्थ असम्बद्ध वचन नहीं बोलते । 16. जीव आदि नौ पदार्थों के स्वरूप को प्रकाशित करनेवाले सार-सार वचन बोलते हैं ।निस्सार वचन नहीं बोलते ।17. अति विस्तार भी नहीं और अति संक्षिप्त भी नहीं ।18. अपनी प्रशंसा और दूसरे की निंदा नहीं ।19. कहने योग्य विषय को उत्तम प्रकार से वर्णन करनेवाली । 20. भगवान की वाणी अतिशय स्निग्धतापूर्ण और मधुरवाणी होती है । 21. किसी भी गुप्त बात प्रकट करनेवाले मर्मवेधी वचन नहीं बोलते । 22. किसी की योग्यता से अधिक गुण-वर्णन करके खुशामद नहीं करते किंतु वास्तविक योग्यता के अनुसार गुणों का कथन करते हैं ।23. भगवान ऐसा सार्थक धर्मोपदेश करते हैं, जिससे उपकार हो और आत्मार्थ की सिद्धि हो ।24. अर्थ को छिन्न-भिन्न करके तुच्छ नहीं बोलते ।25. व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध शब्दों का प्रयोग करते हैं ।26. अधिक जोर से भी नहीं, अधिक धीरे भी नहीं और शीघ्रतापूर्वक भी नहीं, किंतु मध्यम रीते से वचन बोलते हैं ।27. प्रभु की वाणी सुनकर श्रोता ऐसे प्रभावित होते हैं और बोल उठते हैं कि-धन्य है प्रभु की उपदेश देने की

शक्ति ! धन्य है प्रभु की भाषण शैली ! 28. भगवान् हर्षयुक्त और प्रभावपूर्ण शैली से उपदेश करते हैं, जिससे सुननेवालों के सामने हूबहू चित्र उपस्थित हो जाता है और श्रोता एक अनूठे रस में निमग्न हो जाते हैं ।29. भगवान धर्म-कथा करते-करते बीच में विश्राम नहीं लेते, बिना विलम्ब किए धारा-प्रवाह भाषण करते हैं ।30. सुननेवाला अपने मन में जो प्रश्न लाता है, उसका बिना पूछे ही समाधान हो जाता है ।31. भगवान परस्पर सापेक्ष वचन ही कहते हैं, और जो कहते हैं वह श्रोताओं के दिल में जम जाता है ।32. अर्थ, पद, वर्ण, वाक्य-सब स्फुट कहते हैं-आपस में भेलसेल करके नहीं कहते ।33. भगवान ऐसे सात्विक वचन कहते हैं जो ओजस्वी और प्रभावशाली हो ।34. प्रस्तुत अर्थ की सिद्धि होने पर ही दूसरे अर्थ को आरंभ करते हैं ।अर्थात् एक कथन को दृढ़ करके ही दूसरा कथन करते हैं ।35. धर्मोपदेश देते-देते कितना ही समय क्यों न बीत जाय, भगवान कभी थकते नहीं ।

स. 52 **सम्यक्त्व के मुख्य लक्षण कौनसे ?**

उ. 1. शम 2. संवेग 3. निर्वेद 4. अनुकंपा 5. आस्तिकता ।

1. शम-कषाय की मन्दता ।2. संवेग-मोक्ष सुख की इच्छा (और किसी सुख की इच्छा नहीं) 3. निर्वेद-संसार पर से विरक्तभाव । 4. अनुकंपा-दयालुभाव ।5. आस्तिकता-श्री जिनेश्वर भगवान के वचनों पर अटूट श्रद्धा ।

स. 53 **सम्यक्त्व के पाँच प्रकार के नाम लिखो ।**

1. औपशमिक सम्यक्त्व 2. क्षायिक सम्यक्त्व 3. क्षायोपक्षमिक सम्यक्त्व 4. वेदक सम्यक्त्व 5. सास्वादान सम्यक्त्व ।

स. 54 **मिथ्यात्व के पाँच प्रकार के नाम लिखकर अर्थ समझाओ !**

उ. 1. अभिग्राहिक मिथ्यात्व-ग्रहण किए हुए कुधर्म को छोडे नहीं ।
2. अनभिग्रहिक मिथ्यात्व-सभी धर्मों को एक समान मानना ।
3. आभिनिवेशिक मिथ्यात्व-झूठ को समझकर भी छोड़ना नहीं ।
4. सांशयिक मिथ्यात्व-श्री वीतराग देव के वचनों में शंका करना ।
5. अनभोगिक मिथ्यात्व-अज्ञानतावश सच-झूठ कुछ समझ में न आना ।

स. 55 श्रावक सवा वास की दया किस तरह पालते है ?

उ. मुनि महाराज त्रस और स्थावर दोनों प्रकार के जीवों की दया पालते हैं । अत: उन्हें "वीस वसानी" दया पालनेवाले कहा जाता है । श्रावक मात्र त्रस जीवों की दया पाल सकते हैं । अत: वे "दसी वीसा", त्रस जीवों की दया में भी निरपराधी त्रस जीवों की रक्षा कर सकते हैं । यानी हणने की बुद्धि से न मारना, अब रहे पाँच वीसा । निरपराधी जीवों भी आरंभ-समारंभ से हनन होता है, अब रहे ढाई वसा । अपने स्वजन-संबंधी या पशु इत्यादि को रोग हो जाय तो दवा करनी पड़ती है उसमें जीव का हनन होता है अब रहे सवा वसा । इस प्रकार श्रावक सवा वसा की दया पाल सकते हैं ।

स. 56 ध्यान यानी क्या ? वे कितने और कौन-कौन से हैं ?

उ. ध्यान यानी एकाग्रतापूर्वक विचार । ध्यान चार हैं ।

1. आर्त्तध्यान 2. रौद्र ध्पन 3. धर्मध्यान 4. शुक्ल ध्यान ।

स. 57 चार ध्यान का कार्य समझाओ ।

उ. 1. आर्त्तध्यान-मनोज्ञ एवं प्रिय वस्तु के वियोग में अमनोज्ञ एवं अप्रिय वस्तु के संयोग में चित्त की एकाग्र चिंतना होती है उसे आर्त्तध्यान कहते हैं । 2. रौद्रध्यान-हिंसा, झूठ, चोरी, धन आदि के ममत्व भाव में मन एकाग्र करना, अनर्थकारी बातों में मन जोड़ना रौद्र ध्यान है । 3. धर्मध्यान-जिसमें आत्मभाव होता है, विवेकपूर्वक जीवन जीने की द्दष्टि आती है, आत्माका हित-अहित का विचार होता है । जिसमें आचार-विचार का विकास होता है । जिसमें श्रुतधर्म और चारित्रधर्म का चिंतन किया जाता है । श्रेय और प्रेय मार्ग का अनुसरण करके आत्मभावों में लीन होना । देव, गुरु, धर्म के प्रति समर्पित होना धर्मध्यान है । 4. शुक्लध्यान-केवलज्ञान प्राप्त होने के पूर्व की अवस्था का ध्यान और केवली भगवान की योग-निरोध अवस्था की क्रिया । संसार के मायाजाल से अलिप्त होकर आत्मा के स्वरूप का निर्मल अखंड स्वानुभव-शुक्लध्यान है ।

स. 58 प्रभु की अंगपूजा, अग्रपूजा, भावपूजा करने से कौनसा लाभ होता है ? पूजा के ओर कौनसे नाम है ?

उ. प्रभु की अंगपूजा करने से सर्व प्रकार के विघ्नों का नाश होता है । तभी उसे 'विघ्नोपशामिनी' पूजा कहा जाता है ।

प्रभु की अग्रपूजा करने से हमारी आबादी होती है । तभी तो इसे 'अभ्युदयसाधिनी' कहा है ।

प्रभु के सामने भावपूजा करने से हमारे कर्मों का नाश हो जाता है और मोक्षसुख मिलता है । इसीलिए इसे 'निवृत्तिदायिनी' पूजा कहा जाता है ।

स. 59 **प्रणाम यानी क्या ? उसके कितने प्रकार हैं ?**

उ. प्रणाम यानी वंदन करना । (१) दो हाथ जोड़ना वह अंजलिबद्ध प्रणाम । 1. दो हाथ जोड़कर आधा शरीर झुकाना वह अर्धावनत प्रणाम । 2. दो घुटने, दो हाथ और मस्तक इन पाँच अंगों से जमीन को स्पर्श नमस्कार करना यह पंचांग प्रणाम कहा जाता है ।

स. 60 **अवस्थात्रिक के नाम बताकर समझाओ !**

उ. 1. पिंडस्थ अवस्था-केवलज्ञान प्राप्त होने से पूर्व की अवस्था । छद्मस्थ अवस्था (जन्म, राज्य और दीक्षा के समय इन्द्रादि देव प्रभु को जल से अभिषेक करते हैं और चंदन वगेरे सुगंधी द्रव्यों से पूजा करते हैं) हम भी प्रभु का अभिषेक करके चंदन इ.से पूजा करके प्रभु की पिंडस्थ अवस्था की भावना है ।

2. पदस्थ अवस्था-केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद की अवस्था(केवली अवस्था) (अशोक वृक्ष, सुरपुष्पवृष्टि, चामर, छत्र इ. आठ प्रतिहारी प्रभु के साथ रहते हैं) हम भी प्रभु को पदस्थ अवस्था की भावना भाना ।

3. रुपातीत अवस्था, सिद्धस्थ अवस्था, पद्मासन, काउसग्ग और ध्यान से प्रभु की रुपातीत अवस्था विचार के हमें प्रभु की रुपातीत अवस्था की भावना करना ।

स. 61 **प्रणिधान त्रिक यानी क्या ?**

उ. 1. जावंति चेईचाई-तीन भुवन में जिनचैत्यों को वंदन करने रुप चैत्यवंदन । 2. जावंत केविसाहू-भरत, ऐरावत और महाविदेह में स्थित साधु-मुनिराजों को वंदन करनेरूप गुरुवंदन । 3. जयवीयराय-वीतराग परमात्मा को विनति करने का प्रार्थनासूत्र । उपर्युक्त तीनों मन-वचन-काया की एकाग्रतापूर्वक करना यानी प्राणिधान-त्रिक ।

स. 62 **गुरुवंदन कितने प्रकार से और किस पध्धति से किया जाता है ।**

उ. गुरुवंदन तीन प्रकार से किया जाता है ।1. फिट्टावंदन-दो हाथ जोड़कर, मस्तक झुकाकर "मत्थएण वंदामि" ।2. थोभवंदन-दो खमासमणा देकर इच्छकार-अब्भुठ्ठिओ बोलकर वंदन ।3. द्वादशावर्त्तवंदन-वांदना देनेपूर्वक वंदना ।

स. 63 **अतिथिसंविभाग यानी क्या ?**

उ. चौविहार उपवासपूर्वक रात-दिन का पौषध करके, पारना के दिन एकासना करके, मुनि-महाराज को आहार वोहराकर, जितनी वस्तुएँ मुनिराज आहार में लेंगे उतनी ही वस्तु को भोजन में लेना ।

स. 64 **छ'री पालता संघ यानी क्या ? छ'री के नाम बताओ ।**

उ. जिस संघ में 1. रोज एकासना 2. देव-गुरु-धर्म की भक्ति ।3. संथारे सोना 4. सचित्त वस्तु का त्याग 5. पैदल चलना 6. शीलव्रत का पालन ये छ नियम पाले जाते हैं उसे छ'री पालनेवाला संघ कहा जाता है ।
1. एकाहारी 2. भूमि संथारी 3. समकितधारी 4. पादचारी 5. ब्रह्मचारी सचित्त परिहारी (छ'री के नाम हैं ।)

स. 65 **जीव तीन करण करता है । उसके नाम लिखकर अर्थ समझाओ ।**

उ. 1. यथाप्रवृत्तिकरण-आयुष्य कर्म के सिवा सात कर्मों की स्थिति को एक कोडाकोडी सागरोपम से भी कम कर दे, ऐसा विशुद्ध अध्यवसाय । 2. अपूर्वकरण-कभी प्राप्त नहीं ऐसी समकित की प्राप्ति पूर्व का अपूर्व अध्यवसाय। जिससे राग-द्वेष की ग्रंथी नहीं रहती और सम्यक्त्व की योग्यता प्राप्त होती है ।3. अनिवृत्तिकरण-मोक्षरूपी वृक्ष के बीज के समान सम्यक्त्व को प्राप्त किए बिना न रहे ऐसा करण । ये तीन करण भव्य जीव ही कर सकता है ।

स. 66 **संसार में जीव भावी (भव्य) इ. कितने प्रकार के हैं ? कौन-कौनसे ?**

उ. संसार में भवी आदी जीव तीन प्रकार के हैं ।1. भवी 2. अभवी 3. जाती भवी ।

स. 67 **भवी, अभवी और जातिभवी यानी क्या ?**

उ. 1. भवी याने कर्म खपाकर मोक्ष जानेवाला जीव । 2. अभवी याने किसी काल में मोक्ष नहीं जानेवाला जीव ।3. जातिभवी याने मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता तो है पर वैसे संजोग, सामग्री न मिलने से मोक्ष नहीं जा सकते ।

स. 68 जातिस्मरण ज्ञान यानी क्या ? वह कितने भव तक का होता है ?

उ. पिछले भवों में अनुभव की हुई वस्तु का वर्तमान में वैसी ही कुछ वस्तु या दृश्य देखकर, सुनकर जो पिछला स्मरण हो जाय, जान सके वह जातिस्मरण ज्ञान । यह ज्ञान अधिक से अधिक संख्याता भव तक होता है ।

स. 69 राग और द्वेष यानी क्या ? अर्थ समझाओ ।

उ. राग और द्वेष ही आत्मा के भयंकर शत्रु हैं । जन्म-मरण की परिक्रमा करानेवाला हैं । राग याने मन के अनुकूल वस्तु पर मोह होना और द्वेष याने मन के प्रतिकूल वस्तु पर धृणा या तिरस्कार का होना(अप्रीति होना)

स. 70 आत्म कल्याण यानी क्या ?

उ. आत्मा को जन्म-मरण का चक्कर न काटना पडे ऐसी आत्मा की स्वाभाविक स्थिति प्राप्त करना यानी आत्म कल्याण ।

स. 71 मोक्ष यानी क्या ? मोक्ष में क्या नहीं होता ?

उ. मोक्ष यानी जहाँ जन्म-मरण नहीं करना पड़ता ऐसा उत्तमोत्तम स्थान । वहाँ किसी भी प्रकार न तो दुःख होता है, न रोग-शोक होता है । सुख भी ऐसा जो कभी भी नष्ट नहीं होता । अपरंपार आत्मिक सुख का होना यानी मोक्ष । वहाँ से पुनः संसार में आवागमन होता ही नहीं । (स्थायी स्थिति) ।

स. 72 आठ मद के नाम लिखकर वे किस-किसने किए थे ?

उ.
1. जातिमद-हरिकेशी मुनि ने किया था ।
2. कुलमद-मरीचि ने किया था (भ. महावीर का जीव)
3. बलमद-श्रेणिक तथा वसुभूति ने किया था ।
4. रुपमद-सनत्कुमार चक्रवर्ती ने किया था ।
5. तपमद-कुरगडु ऋषि ने किया था ।
6. ऋद्धिमद-दशार्णभद्र राजा ने किया था ।
7. विद्यामद-स्थुलिभद्रजी ने किया था ।
8. लोभमद-सुभूम चक्रवर्ती ने किया था ।

स. 73 **सात भय के नाम लिखो और समझाओ ।**

उ. 1. इहलोक भय-मनुष्य से भय ।

2. परलोक भय-मनुष्य को देवादि का भय ।

3. आदान भय-धन-माल चोरी होने का भय ।

4. अकस्मात भय-अचानक नुकसान होने का भय ।

5. आजिविका भय-व्यापार, नोकरी छूट जाने का भय ।

6. मरण भय-मृत्यु पाने का भय ।

7. अपयश या अपकीर्ति भय-बूरा बोलेंगे या बूरा दिखाई देगा ऐसा भय ।

स. 74 **पाँच दान के नाम और अर्थ समझाओ ।**

उ. 1. अभयदान-जीव को मृत्यु से बचाना ।2. सुपात्रदान-साधु-साध्वीजी महाराज को आहार-पानी इत्यादि वोहराना । 3. अनुकंपादान-गरीब, लूले-लंगडे, अंधे इ. को खाने-पीने, कपडे, दवा, पैसे इ. देना ।

4. उचितदान-आवश्यक प्रसंग पर व्यवहार सँभालने के लिए देना ।

5. कीर्तिदान-यश की आकांक्षा से देना ।

स. 75 **दान के पाँच भूषणों के नाम लिखो ।**

उ. 1. देते समय आनंदाश्रु आवे ।2. रोमांच खडे हो जाय ।3. बहुमान पैदा हो ।4. प्रिय वचन बोले ।5. देने के बाद अनुमोदना करें ।

स. 76 **दान के दूषण कौन से ?**

उ. 1. अनादर से देना ।2. बहुत समय व्यतीत करके देना ।3. मुँह बनाकर अनिच्छा से देना ।4. अप्रिय वचन सुनाकर देना । 5. दान देने के बाद खेद करना ।

स. 77 **मार्गानुसारी के 35 बोल कौन-कौन से ?**

उ. 1) न्याय से धन कमाना ।

2) उत्तम पुरुषों के आचरण की प्रशंसा करना ।

3) समान कुलाचारवाले परंतु अन्य गोत्र में विवाह करना ।

4) पाप कार्य से डरना ।

5) देशाचार के अनुसार वर्तन करना ।

6) किसी की भी निंदा न करना ।

7) मर्यादा का पालन कर सकें ऐसे मकान में अच्छे लोगों के पड़ोस में रहना ।
8) सद् आचरण करनेवालों का संग करना ।
9) माता-पिता की सेवा करना ।
10) लडाई, दुष्काल इ. उपद्रववाले स्थान का त्याग करना ।
11) निंदनीय कार्य न करना ।
12) आवक के अनुसार खर्च करना ।
13) आवक अनुसार वेश-भूषा करना ।
14) आठ प्रकार की बुद्धि के गुण वृद्धिगत करना । जैसे-
    1) शास्त्र सुनने की इच्छा रखना ।
    2) शास्त्र सुनना ।
    3) शास्त्र का अर्थ समझना ।
    4) शास्त्र की गाथा कंठस्थ करना ।
    5) शास्त्र का सामान्य ज्ञान प्राप्त करना ।
    6) अर्थविज्ञान को समझना ।
    7) शास्त्र के गूढार्थ जानना ।
    8) तत्त्वज्ञान सीखना ।
15) हमेशा धर्म की बातें सुनते रहना ।
16) भोजन पचने के बाद खाना, अजीर्ण हो जाय तो भोजन न करना ।
17) कडी भूख लगने पर खाना, प्रकृति के अनुकूल भोजन लेना ।
18) धर्म, अर्थ, काम में सुमेल रखना ।
19) अतिथि, साधु और गरीबों को यथोचित अन्न-पानी देना ।
20) कदाग्रह कभी न करना ।
21) गुण का पक्षपात और गुणीजनों का बहुमान करना ।
22) राजा इ.ने निषेध किए देश में न जाना और निषेध किए समय में प्रवृत्ति न करना । (कायदा-कानून का भंग न करना)
23) अपनी शक्ति के अनुसार काम प्रारंभ करना ।
24) माता-पितादि की भक्ति, स्त्री पुत्र इ. तथा विधवा बहन, पुत्री इ. का फर्ज आ पडे तो उनका भरण-पोषण करना ।

25) व्रतधारी तथा ज्ञानीजनों का विनय करना ।

26) कोई भी काम प्रारंभ करने से पूर्व शुभाशुभ फल का दीर्घदृष्टि से विचार करना ।

27) अपने गुण-दोषों का परीक्षण करना ।

28) अपने पर किसी ने कोई उपकार किया हो तो कभी मत भूलना ।

29) विनय, विवेक इ. गुणों द्वारा लोकप्रिय बनना ।

30) लाज-मर्यादा से रहना ।

31) दयाभाव रखना ।

32) क्रूरता नहीं सौम्य स्वभाव रखना ।

33) परोपकार करने में अग्रगण्य बनना ।

34) काम, क्रोध, लोभ, मान, मद, तथा हर्ष इ. अंतरंग छ शत्रुओं को जीतना ।

35) इन्द्रियों को वश करने का प्रयत्न करना ।

स. 78 **आयुष्य के कितने प्रकार हैं ? कौन-कौन से ? उनके अर्थ बताओ ?**

उ. आयुष्य के दो प्रकार है- 1) सोपक्रम-आयुष्य तो बहुत लंबा है पर उपक्रम लगने से आयुष्य जल्दी भोगा जाय (आयुष्य कर्म तो अभी है पर अचानक आपत्ति से मृत्यु हो जाना ।) 2) निरुपक्रम-उपक्रम लगने पर भी मृत्यु नहीं होती, आयुष्य पूर्ण हो तभी मृत्यु होती है

स. 79 **आयुष्य कितने प्रकार से घटता है ?**

उ. आयुष्य सात प्रकार से घटता है ।

1) राग, स्नेह और भय के अत्यंत विचारों से । 2) तलवार आदि शस्त्रों से तथा मंत्र-तंत्र के योग से । 3) अधिक भोजन करने से । 4) शूल इ. वेदना से । 5) गड्ढे में गिर जाने से । 6) विषैले जंतुओं के दंश से । 7) अपने श्वासोच्छ्वास कम-ज्यादा या रुक जाने से ।

स. 80 **आत्मा के कितने भेद हैं ? कौन-कौन से ?**

उ. आत्मा के तीन भेद हैं ?

1) बहिरात्मा-जब मूढ दृष्टि हो ।

2) अंतरात्मा-जो तत्त्वदृष्टिवाला हो ।

3) परमात्मा-जब आत्मा पूर्ण ज्ञान प्रकाशयुक्त हो ।

स.81 देवता भी जिस वस्तु की आकांक्षा करते हैं वे कौनसी वस्तुएँ हैं ?

उ. 1) मनुष्यभव 2) आर्यदेश में जन्म 3) धर्म ।

स. 82 स्वभाव कितने प्रकार का होता है ? कौन-कौन सा ?

उ. तीन प्रकार के स्वभाव 1) सत्वगुणी-शीघ्र उपदेश ग्रहण करे ।

2) रजोगुणी-कठोर स्वभाववाला ।

3) तमोगुणी-बात-बात में जो गुस्सा करे, उग्र बने ।

स. 83 स्थविर कितने प्रकार के ? कौन-कौन से ?

उ. तीन प्रकार के 1) वय स्थविर-साधु (60) वर्ष से अधिक उमर वाले । श्रुतस्थविर-श्री आचारांगादि चार अंग से अधिक ज्ञान प्राप्त किए हुए मुनिवर ।

3) व्रतस्थविर-वीस वर्ष से अधिक दीक्षा पर्यायवाले साधु ।

स. 84 तिथियों के प्रकार कौन से ? कौनसी तिथि किस आराधना के लिए है ?

उ. 1) दो बीज दर्शनतिथि कहलाती है और वह सम्यग्दर्शन की आराधना के लिए हैं ।2) दो पंचमी और दो ग्यारस-ये चार पर्व तिथियाँ, ज्ञानतिथियाँ हैं । चौद पूर्व तक के ज्ञान की आराधना के लिए हैं ।3) दो अष्टमी, दो चौदस, पूर्णिमा और अमावास्या ये छ तिथियाँ चारित्र तिथियाँ कहलाती हैं । वे चारित्र की आराधना करने के लिए हैं ।

स. 85 वैराग्य कितने प्रकार के हैं ? नाम लिखकर अर्थ बताओ ।

उ. वैराग्य तीन प्रकार के हैं ?

1) दुःखगर्भित वैराग्य-स्त्री, पुत्र, मित्र धान्यादि सुख देनेवाली इष्ट वस्तुएँ प्राप्त होकर जब उनका नाश होता है, तब मन में दुःख होता है और उस निमित्त से सारे संसार पर ही उद्वेग आ जाता है । 2) मोहगर्भित वैराग्य-स्वर्गादि सुख की इच्छा से जो वैराग्य प्रगट हो । ऐसा वैराग्य अज्ञानजनित होता है, क्योंकि इस प्रकार मोह से ग्रस्त होकर आया वैराग्य जीवाजीवादि तत्त्वों के स्वरूप को विपरीत रूप से ग्रहण करता है । 3) ज्ञानगर्भित वैराग्य-संसार असार है, शरीर नाशवंत है, ऐसी बुद्धि से जो वैराग्य आता है ।

स. 86 मनुष्यजन्म में उपादेय योग्य धर्म के नाम लिखकर वे क्यों आदरने योग्य हैं ? समझाओ ।

उ. **1) दान 2) शील 3) तप 4) भाव**

1) दान-धन का ममत्व हटाने के लिए ।

2) शील-भोग लिप्सा का त्याग करने के लिए ।

3) तप-आहार की इच्छा पर अंकुश लगाने के लिए ।

4) भाव-आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान टालने के लिए ।

स. 87 **चार कषाय किस-किस का नाश करते हैं ?**

उ. 1) क्रोध कषाय-प्रीति का नाश करता है ।

2) मान कषाय-विनयगुण का नाश करता है ।

3) माया कषाय-सरलता, ऋजुता का नाश करता है ।

4) लोभ कषाय-सभी वस्तुओं का नाश करता है।

स. 88 **चार प्रकार के 'जिन' कौन-कौन से ? समझाओ ।**

उ. 1) नामजिन-श्री जिनेश्वर भगवान का नाम ।

2) स्थापनाजिन-श्री जिनेश्वर भगवान की प्रतिमा ।

3) द्रव्यजिन-जो तीर्थंकर होंगे अथवा हो गये हैं ऐसे जीव ।

4) भावजिन-जो तीर्थंकर की तरह विचरते हैं ।

स. 89 **शरण योग्य वस्तुएँ कौन-कौनसी हैं ? बताओ ।**

उ. शरण योग्य चार वस्तुएँ हैं : 1) अरिहंत 2) सिद्ध 3) साधु 4) धर्म ।

स. 90 **दान, शील, तप और भाव से किन-किन को अतुल सुख मिला ?**

उ. 1) दान धर्म से धन्ना-शालिभद्र को अतुल सुख-संपत्ति प्राप्त हुई ।

2) शील धर्म से-सुदर्शन शेठ, कलावती इ. को स्वर्ग सुख मिला ।

3) तप धर्म से-दृढप्रहारी, ढंढण आदि ऋषियों ने मोक्ष पाया ।

4) भाव धर्म से-प्रसन्नचंद्र, इलायचीकुमार, मरुदेवी माता आदि ने सिद्ध-बुद्ध होकर अखंड सुख पाया ।

स. 91 **चार प्रकार के आहार कौन-कौन से ? समझाओ ।**

उ. 1) अशन 2) पान 3) खादिम 4) स्वादिम ।

1) अशन यानी दाल, चावल, रोटी, सब्जी, मिठाई इ.

2) पान यानी पीने योग्य वस्तुएँ (पानी इ.)

3) खादिम यानी भुनी हुई वस्तुएँ (चने, इ. फल इ.)

4) स्वादिम-मुखवास, सौंठ, लौंग, धनादाल, बडीरोप, पान, सुपारी इ.

स. 92 किसी व्यक्ति को अपने वश में कैसे किया जाय ?

उ. 1) प्रियवचन बोलना 2) विनयशील बर्ताव 3) दीनजनों को दान देना 4) गुणी जनों के गुण ग्रहण करना और उनकी प्रशंसा करने से ।

स. 93 चांडाल कितने प्रकार के ? कौन-कौन से ? उनके अर्थ समझाओ ।

उ. चांडाल चार प्रकार के : 1) जातिचांडाल-चांडाल जाति में जन्मा हुआ ।
2) कर्म चांडाल-चांडाल के समान निर्दय कर्म करना ।
3) क्रोध चांडाल-आवेश में आकर न करने योग्य कार्य करना ।
4) निंदक चांडाल-अवर्णवाद, निंदा करना ।

स. 94 देवता मनुष्यलोक में कौन-कौन से अवसर पर आते हैं ।

उ. देवता मनुष्यलोक में आने के चार कारण हैं -
1) श्री तीर्थंकर देव के पाँचों कल्याणक प्रसंगपर ।
3) अपने पर उपकार करनेवाले आचार्य, उपाध्याय के वंदन करने के लिए ।
3) तपस्वी का महिमा बढ़ाने के लिए ।
4) स्वजन इ. के स्नेह से आकर्षित होकर ।

स. 95 देवताओं की पहचान क्या ?

उ. 1) जो आँख की पलकें झपकाते नहीं ।
2) जिनके शरीर की छाया पडती नहीं ।
3) देवताओं के गले की माला सूखती (कुम्हलाती) नहीं ।
4) देवताओं के पैर जमीन से चार ऊँगुल ऊपर होते हैं ।

स. 96 देवता पाँच दिव्य काम कौनसे करते हैं ?

उ. 1) सुवर्णवृष्टि 2) कुसुमवृष्टि 3) सुगंधी वासक्षेप 4) देवदुंदुभि 5) अहो दानं.... अहो दानं.... ऐसी घोषणा ।

स. 97 पाँच प्रकार की क्रियाएँ कौनसी ?

उ. 1) विष-इस लोक में सुख प्राप्त करने की इच्छा से की गई क्रिया ।
2) गरल-परभव की सुख पाने की इच्छा से की गई क्रिया ।
3) अननुष्ठान-उपयोग शून्य क्रिया ।
4) तद्‌हेतु-शुद्ध क्रिया के राग से की गई अशुद्ध क्रिया ।
5) अमृत-उच्च कोटि की भावपूर्वक की गई संपूर्ण शुद्ध क्रिया ।

स. 98 **मुनष्य जन्म के सुख इ. को नष्ट करनेवाली छः वस्तुएँ कौनसी ?**

उ. 1) आलस्य-सुख का नाश ।

2) कुसंप-लक्ष्मी का नाश ।

3) लडाई-जान माल का नाश ।

4) मिताहार-रोग का नाश ।

5) सरलता-शत्रु का नाश ।

6) तप-पाप का नाश करता है ।

स. 99 **मनुष्यगति से आए हुए के लक्षण कौनसे ?**

उ. 1) सौभाग्यशाली होता है 2) मधुरवचन बोलता है 3) दानशूर होता है 4) सरल स्वभावी 5) चतुर 6) चतुर भी और प्रेमपूर्व स्वभाव का भी ।

स.100 **नरकगति से आए हुए के लक्षण कौन से ?**

उ. 1) दुर्भागी होता है 2) क्लेशी होता है 3) रोगी होता है 4) अत्यंत भयभीत होता है 5) अत्यंत आरंभी-समारंभी 6) अत्यंत क्रोधी ।

स.101 **तिर्यंच गति से आये हुओं के लक्षण कौन से ?**

उ. 1) लोभी 2) कपटी 3) झूठा 4) अतिक्षुधा 5) मूर्ख 6) मूर्खों से मित्रता ।

स.102 **देवगति से आनेवालों की पहचान कौनसी ?**

उ. 1) सत्यवादी-दृढधर्मी 2) देवगुरु का भक्त 3) धनवान 4) रूपवान 5) विद्वान-पंडित ।

स.103 **लेश्या कितनी और कौन-कौनसी हैं ? उनके परिणाम क्या हैं ?**

उ. लेश्या 6.

1) कृष्णलेश्या-अत्यंत क्रोधी, कपटी, ईर्षालु, द्वेषी, मन में सदा हिंसक भावधारा, पाँच आश्रव में प्रवृत्ति करनेवाला, छः काया की विराधना करनेवाला, तीव्र भावों से आरंभादि करनेवाला, निर्दयता के परिणाम (भाव)वाला, क्रूर, इन्द्रियों को वश में न रखनेवाला, ऐसे दुष्ट भावों से युक्त जीव कृष्ण लेश्या के परिणामवाला होता है ।

2) नील लेश्या : आलस्य, प्रमाद, एवं मंदबुद्धि से युक्त । काम भोगों में आसक्त, विश्वासघात करनेवाले, कामी, क्रोधी, इर्षालु, कदाग्रही, तपस्या नहीं करनेवाला, अविद्यावाला, मायावी, निर्लज्ज, विषयों में गृद्ध, बिना विचारे काम करनेवाला ।

3) कापोत लेश्या :- वक्र वचन बोलनेवाला, वक्र आचरण करनेवाला, अपने दोषों को छिपानेवाला, छल-कपट युक्त, मिथ्यादृष्टिवाला मर्मकारी वचन बोलनेवाला, मत्सरी, दूसरों की बढ़ती उन्नति को देखकर जलनेवाला ।

4) तेजोलेश्या : विद्वान, करुणा से युक्त, सबसे प्रीति रखनेवाला, लाभ-अलाभ में समभावी, विद्याप्रेमी, अहंकार रहित, चपलता रहित, कूतुहल आदि न करनेवाला, परम विनय भक्ति करनेवाला, इन्द्रिय-दमन करनेवाला, उपधान तप करनेवाला, स्वाध्यायी धर्म में दृढ़ रहनेवाला, पाप से डरनेवाला, समी प्राणियों का हित चाहनेवाला, शुभ भावों से युक्त ।

5) पद्मलेश्या :- सच्चे देव, गुरु धर्म के प्रति श्रद्धा रखनेवाला, अल्पक्रोधवाला, अल्पमान वाला, अल्प माया वाला, अल्प लोभवाला, शांत चित्तवाला, उपधानादि तप करनेवाला, जितेन्द्रिय, परिमित बोलनेवाला इन गुणों से युक्त पद्मलेश्या के परिणामवाला होता है ।

6) शुक्ल लेश्या-राग-द्वेषादि से मुक्त, शोक, निंदा, भय से मुक्त परमात्म तत्त्व से संपन्न । चित्तवाला, पाँच समितियों से युक्त ।

लेश्याओं का फल - कृष्णलेश्या का फल नरक, नीललेश्या का फल-स्थावरता कापोत लेश्या का फल, तिर्यंचपना, तेजोलेश्या का फल मनुष्यपना, पद्मलेश्या का फल देवपना और शुक्ल लेश्या का फल मोक्ष प्राप्ति है।

स.104 **6 आरे कौन-कौन से हैं ? उनके नाम और वर्ष प्रमाण लिखो ।**

उ. 1) अवसर्पिणी काल में सुषमासुषमा पहला आरा 4 कोडाकोडी सागरोपम का ।

2) सुषमा-दूसरा आरा 3 कोडाकोडी सागरोपम का ।

3) सुषमादुषमा-तीसरा आरा 2 कोडाकोडी सागरोपम का ।

4) दुषमासुषमा-चौथा आरा 1 कोडाकोडी सागरोपम । 42 हजार वर्ष कम का ।

5) दुषमा-पाँचवा आरा 21 हजार वर्ष का ।

6) दुषमा-दुषमा-छठा आरा 21 हजार वर्ष का ।

इस तरह 6 आरे कुल 10 कोडाकोडी सागरोपम के हैं । 10 कोडाकोडी सागरोपम की एक उत्सर्पिणी, और 10 कोडाकोडी सागरोपम की एक अवसर्पिणी-दोनों मिलाकर 20 कोडाकोडी सागरोपम का एक काल चक्र होता है ।

स. 105 **'नय' यानी क्या ? कितने प्रकार ? कौन-कौन से ? समझाओ ।**

उ. किसी भी विषय का सापेक्ष निरूपण करनेवाला विचार 'नय' कलहाता है । उसके सात प्रकार क्रमशः इस प्रकार है-

1) नैगम 2) संग्रह 3) व्यवहार, 4) ऋजुसूत्र 5) शब्द, 6) समभिरूढ 7) एवं भूतनय ।

1) नैगमनय-यानी जो विचार लोकरूढि या लौकिक संस्कार से प्रवर्ते । जैसे कि कोई व्यक्ति को कपडे खरीदने जाते समय पूछा जाय कि "कहाँ जा रहे हो ?" तो कहता है "कपडे सिलवाने ।" उसका ऐसा कहना नैगयनय की द्रष्टिसे सत्य है, क्योंकि वहाँ से वह दरजी के पास कपडे सिलवाने जानेवाला है । नैगमनय की दृष्टि सत्य है ।

2) संग्रहनय-जड़ नैगमनय रूप अनेक व्यक्तियों में जो सद्रूप एक सामान्य तत्व हैं । उसी पर दृष्टि रखकर दूसरे विशेषों को ध्यान में लाते हुए सभी व्यक्तियों को एक रूप मानकर ऐसा विचार करना कि संपूर्ण जगत् सद्रूप है- क्योंकि सत्ता रहित कोई वस्तु है ही नहीं उसे ही संग्रह नय कहते हैं । जैसे कि कोई कहे कि-मैं तुम्हें आज लड्डूका भोजन खिलाऊँगा" ऐसा कहनेवाला लड्डू के साथ-साथ, दाल, चावल इ. भी खिलाएगा फिर भी संग्रहनय की दृष्टि से सत्य है ।

3) व्यवहारनय-विविध वस्तुओं को एक रूप में संकलित करने के बाद भी जब उनका विशेष रूप में बोध कराना हो, या व्यवहार में उपयोग करने का प्रसंग आवे, तब उनका विशेष रूप से भेद करके पृथक्करण करना पड़ता है । वह व्यवहारनय जैसे कपडा कहने मात्र से भिन्न-भिन्न प्रकार के वस्त्रों का अलग-अलग बोध नहीं हो सकता । जो सिर्फ खादी चाहता है वह वस्त्रों का विभाग किए बिना नहीं पा सकता क्योंकि वस्त्र कई प्रकार के हैं । खादी का कपडा, मिल का कपडा इ. यह व्यवहार नय

का विषय हैं।

उपर्युक्त तीन नय द्रव्यार्थिक नय के भेद माने जाते हैं । अब चार पर्यायार्थिक नय देखेंगे ।

4) ऋजुसूत्रनय-जो विचार भूत और भविष्य काल का ख्याल न करके केवल वर्तमान को ही ग्रहण करता है वह ऋजुसूत्र है । जैसे-पुत्र हयात हो और माता-पिता की सेवा करे वह पुत्र है ।

5) शब्दनय-जो मुख्यत: शाब्दिक धर्मों के आधार पर जो अर्थभेद भी अनेक मान्यताएँ प्रचलित हैं वह शब्दनय । उदा. शास्त्र में एक ऐसा वाक्य मिलता है कि-राजगृह नाम का नगर था । इस वाक्य का अर्थ मोटे रूप से ऐसा होता है कि राजगृह नाम का नगर भूतकाल में था, वर्तमान में नहीं, जब कि वास्तव में राजगृह नगर मौजूद है । इसमें कालभेद के साथ अर्थभेद है ।

6) समभिरुढनय-यह नय शब्द की व्युत्पत्ति के आधार से अर्थभेद की मान्यता रखनेवाला विचार याने समभिरुढनय ।

उदा. राजचिह्नों से शोभित वह 'राजा' । जनता का रक्षण करे वह 'नृप' पृथ्वी का पालन करे वह 'भूपति' । इस तरह शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार अलग-अलग अर्थभेद करना वह समभिरुढनय ।

7) एवंभूतनय-जब वास्तव में कोई क्रिया हो रही हो, उसी समय उससे सम्बन्ध रखनेवाले विशेषण या विशेष्य नाम का व्यवहार करनेवाली मान्यताएँ एवंभूतनय कहलाती हैं। उदा. राजा स्नान या भोजन कर रहा हो उस समय वह राजा नहीं, जब वह राज चिह्न धारण करेगा तभी वह राजा कहलाएगा ।

स. 106 **दस प्रकार के कल्पवृक्ष के नाम और उनकी विशेषता क्या ?**

उ. 1) गृहांग-रहने के लिए मकान देवें । 2) ज्योतिरंग-प्रकाश देवें । 3) भूषणांग-आभूषण देवे । 4) भोजनांग-हर प्रकार का भोजन देवे । 5) वस्त्रांग-हर प्रकार के वस्त्र देवे । 6) चित्ररसांग-हर प्रकार के पेय पदार्थ देवे । 7) तूर्यांग-हर प्रकार के बाजे देवे । 8) कुसुमांग-सुगंधित पुष्प देवे । 9) भाजनांग-पात्र देवे । 10) दीपांग-दीपक प्रगटावे ।

स. 107 **नारकी के जीव दस प्रकार की कौनसी वेदना सहन करते हैं ?**

उ. 1) शीत 2) उष्ण 3) क्षुधा 4) पिपासा 5) खुजली 6) परवशता 7) ज्वर 8) दाह 9) 10) शोक ।

स. 108 **तेरह काठियों को नाम बताकर उनकी विशेषता समझाओ ।**

उ. 1) आलस्य-देव-गुरु के पास जाने में आलस्य । 2) मोह-स्त्री-पुरुष इ. में गृद्ध रहना । 3) अविनय-अवज्ञा-गुरु इ. की । 4) अभिमान-अपने आपको महान समझना । 5) क्रोध-गुरुका आगत-स्वागत न करे । 6) प्रमाद-प्रमाद में पडा रहे । 7) कृपण-गुरु के पास जाएँ तो खर्च करवाएँगे । 8) भय-गुरु के पास जाएँ तो व्रत पच्चक्खाण लेने पडेंगे । 9) शोक-शोक के कारण गुरु के पास न जावें । 10) अज्ञान-अज्ञानता के कारण गुरु का सान्निध्य न चाहे । 11) विकथा-अनुचित, व्यर्थ, गपशप में समय बितावे । 12) कौतुक-मार्ग में भीड़ में कौतुक देखता खडा रहे । 13) विषय-कामभोग में लिप्त रहता है ।

स. 109 **आगम सूत्र को कब न पढ़े ?**

उ. 1) सूर्योदय के पहले और बादमें एक घड़ी तक न पढ़े । (सूर्योदय के पहले दो घड़ी तक न पढें ऐसी भी मान्यता है) 2) सूर्यास्त के पहले दो घड़ी और सूर्यास्त के बाद दो घडी तक न पढ़े । 3) मध्याह्न याने दोपहर में बारह बजे दो घड़ी तक नहीं । 4) मध्यरात्री याने 12 बजे दो घड़ी तक न पढें ।

स. 110 **श्री सिद्धगिरिजी पर चैत्यवंदन करने के मुख्य स्थान कितने ? कौन-कौन से ?**

उ. पाँच स्थान हैं :- 1) तलहटी में चरणों के आगे । 2) गिरिराज पर श्री शांतिनाथ प्रभु के देरासर में । 3) (मूलनायक) श्री आदिश्वर दादा के सामने । 4) श्री पुण्डरिकस्वामीजी के सम्मुख । 5) रायण चरण में ।

स. 111 **श्री सिद्धगिरिजी पर के नौ टूंक के नाम लिखो ।**

उ. 1) श्री आदिश्वर दादा की टूंक । 2) मोतीशा शेठ की टूंक । 3) बालाभाई की टूंक । 4) प्रेमचंद मोदी की टूंक । 5) हेमाभाई शेठकी टूंक । 6) उजमबाई की टूंक । 7) साकरचंद प्रेमचंद की टूंक । 8) छीपावसही की टूंक । 9) सदा सोमजी की टूंक ।

स. 112 श्री सिद्धगिरिजी पर सोलह बडे उद्धार किस-किसने करवाए ?

उ. 1) भरत चक्रवर्ती ने 2) दंडवीर्य राजा ने 3) इशानेन्द्र ने 4) माहेन्द्र ने 5) ब्रह्मेन्द्र ने 6) चमरेन्द्र ने 7) सागर चक्रवर्ती ने 8) व्यंतरेन्द्र ने 1) चंद्रयशा राजा ने 9) चक्रायुध राजा ने 10) रामचंद्रजी ने 11) जावड शाहने 12) बाहड मंत्री ने 13) मराशाह ने 14) 15) कर्मा शाह ने ।

स. 113 श्री सिद्धगिरिजी का छ आरे में कितना प्रमाण है ?

उ. पहला आरा 80 योजन, दूसरा आरा 70 योजन, तीसरा आरा 60 योजन, चौथा आरा 50 योजन, पंचम आरा 12 योजन, छठा आरा 7 हाथ इस प्रकार प्रमाण गिना गया है ।

स. 114 स्थापनाचार्य पडिलेहना के तेरह बोल कौन-कौन से ?

उ. 1) शुद्ध स्वरूप का धारक गुरु 2) ज्ञानमय 1) दर्शनमय 3) चारित्रमय गुरु 4) शुद्ध श्रद्धामय 5) प्ररुपणामय 6) स्पर्शनामय 7) गुरुपंचाचार पाले 8) गुरु पंचाचार पलावे 9) गुरु पंचाचार अनुमोदे 10) गुरु मनोगुप्ति 11) वचन गुप्ति 12) काय गुप्ति से गुप्त ।

स. 115 ज्ञानियों ने एक राजलोक का प्रमाण किस प्रकार समझाया है ।

उ. एक देव सौधर्म देवलोक से क्रीडापूर्वक (सहजता से) हजारभारवाला लोहे का गोला अपनी सारी शक्ति लगाकर भूमि पर फेंके वह 7 दिन, 6 प्रहर, 6 मुहूर्त, 6 घडी, 6 पल में पृथ्वी पर आता है । यह एक राज का प्रमाण माना जाता है ।

स. 116 चौदह गुणस्थान के नाम लिखो ।

उ. 1) मिथ्यात्व 2) सास्वादन 3) मिश्र 4) अविरति 5) सम्यग्दृष्टि 6) देशविरति 7) प्रमत्त 8) अप्रमत्त 9) अपूर्वकरण(निवृत्ति) 10) अनिवृत्तिबादर 11) सूक्ष्मसंपराय 12) उपशान्तमोह 13) क्षीण मोह 14) सयोगी केवली 15) अयोगी केवली ।

स. 117 स्त्रियाँ उसी भव में क्या नहीं पा सकती ?

उ. 1) तीर्थंकर पदवी (श्री मल्लीनाथ प्रभु तीर्थंकर हुए यह एक आश्चर्य है) 2) चक्रवर्तीपन 3) वासुदेवपन 4) बलदेव 5) संभिन्न श्रोतालब्धि 6) चारण लब्धि 7) पुलाक लब्धि 8) आहारक शरीर ।9) नारदपन 10) प्रति वासुदेवपन

उपर्युक्त दस बातें स्त्रियों को उसी भव में प्राप्त नहीं होती ।

स. 118 **सिद्धियाँ कितनी हैं और कौन-कौनसी ।**

उ. सिद्धियाँ आठ हैं ।

1) अणिमा-इस लब्धि से शरीर को इतना सूक्ष्म बनाया जा सकता है कि सुई के नाक में से भी निकल जाय । 2) महिमा-इस लब्धि से मेरु पर्वत से भी बडा शरीर बनाया जा सकता है । 3) लधिमा-इस लब्धि से शरीर पवन से भी हलका बनाया जा सकता है । 4) गरिमा-इस लब्धि से शरीर इतना अधिक वजनदार बनाया जा सकता है कि वज्र से भी वजनदार हो जाय । 5) प्राप्ति शक्ति-इस लब्धि से शरीर को इतना ऊँचा बनाया जा सकता है कि पैर भूमि पर और ऊँगुलियों मेरुपर्वत के शिखर तक को छू सकती है और ग्रहादिक को स्पर्श कर सकते हैं । 6) प्राकाम्य शक्ति-इस लब्धि से पानी में डूबकी लगाते हैं वैसे जमीन में डूबकी लगा सकते हैं । और पानी में जमीन पर चलते हैं वैसा चल सकते हैं । 7) इशित्व-इस लब्धि से तीर्थंकर की, चक्रवर्ती की और इन्द्र की ऋद्धि प्रगट करने शक्तिमान हो सकता है । 8) वशित्व-इस लब्धि से सिंह इत्यादि हिंसक, क्रूर-विकराल जानवरों को वश कर सकते हैं ।

स. 119 **पच्चक्खाण विविध प्रकार के हैं उनके फल क्या हैं ?**

उ. 1) नवकारशी-एक सौ वर्ष तक के नारकी जीवों को जो दुःख सहना पडे, जिससे जो कर्म निर्जरा होती हैं, उतनी कर्म निर्जरा इस पच्चक्खाण से होती है । 2) पोरसी-एक हजार वर्ष तक नारकी जीवों को जो दुःख सहन करना पडे और जितनी कर्मनिर्जरा होती है उतनी कर्मनिर्जरा होती है । 3) डेढपोरसी-दस हजार वर्ष तक नारकी जीवों को जो दुःख भोगने पडते हैं और जितनी कर्म निर्जरा होती उतनी निर्जरा होती है ।

4) पुरिमुड्ढ-एक लाख वर्ष तक नारकी जीवों को जो दुःख भोगने पडे और जो कर्म निर्जरा हो उतनी कर्म निर्जरा होती है । 5) अवड्ढ-दस लाख वर्ष तक नारकी जीवों को जो दुःख पडे और जीतनी कर्म निर्जरा करे उतनी निर्जरा होती है । 6) निवी-एक क्रोड वर्ष तक नारकी जीवों को जो दुःख भोगना पडे और जितनी कर्म निर्जरा होती है उतनी निर्जरा होती है । 7) एकदत्ति-सो करोड वर्ष तक नारकी जीवों को जो दुःख

भोगना पडे उतनी कर्मनिर्जरा इस पच्चक्खाण से होती है । 8) आयंबिल-एक हजार क्रोड वर्ष तक नारकी जीवों को जो दुःख भोगने पडते है उससे जो कर्म निर्जरा होती है उतनी कर्मनिर्जरा इस व्रत से होती है ।9) उपवास-दस हजार क्रोड वर्ष तक नारकी के जीवों को जो दुःख भोगने पड़ते हैं, उससे जो निर्जरा होती है उतनी निर्जरा होती है ।

स. 120 **विहरमान तीर्थंकर यानी क्या ? वे कितने हैं । नाम लिखो ।**

उ. विहरमान तीर्थंकर यानी वर्तमान में विचरते तीर्थंकर । वे बीस हैं । 1) श्री सीमंधर 2) युगमंदर 3) बाहु 4) सुबाहु 5) सुजातस्वामी 6) स्वयंप्रभुजी 7) ऋषमानंद 8) अनंतवीर्य 9) सुरप्रभ 10) श्री विशाल 11) वज्रंधर 12) चंद्रानन 13) चंद्रबाहु 14) भुजंग 15) ईश्वरस्वामी 16) नेमिप्रभ स्वामी 17) वीरसेन स्वामी 18) देवयशा 19) चंद्रयशा 20) अजितवीर्य ।

स. 121 **ॐकार में पंच परमेष्ठि का समावेश किस प्रकार होता हैं ।**

उ. अरिहंत का प्रथमाक्षर अ, अशरीरी(सिद्ध) का प्रथम अक्षर अ, आचार्य का प्रथमाक्षर आ, उपाध्याय का प्रथमाक्षर उ, और मुनिवरों का प्रथमाक्षर मु इस तरह अ+अ+आ+उ-इन चारों की संधि करने पर 'ओ' बना उस के बाद का 'म्' का बिंदु मिलकर बना ॐ ।

संदर्भग्रंथ सूचि

- जैनधर्म परिचय (आ. श्री विजयभुवनभानुसूरिजी म.)
- पदार्थसंग्रह (आ. श्री विजय हेमचंद्रसूरिजी म.)
- जैनतीर्थ दर्शनावली (आ. श्री विजय चंद्रोदयसूरिजी म.)
- शांत सुधारस भावानानुवाद (आ. श्री विजय भद्रगुप्तसूरिजी म.)
- श्री राजनगर जैन पाठशाला-पाठयक्रम ।

શ્રી
મહાવીર જૈન
વિદ્યાલય
મુંબઈ

દર્શન
જ્ઞાન
ચારિત્ર

ઉપશમ
વિવેક
સંવર

પઢમં નાણં તઓ દયા